क़ुरआन : संदेहों का निवारण

सनाउल्लाह

विषय-सूची

1. प्रस्तावना 5
2. क्या क़ुरआन ईश्वरीय ग्रंथ है? 9
3. क्या क़ुरआन सुरक्षित है? 32
4. क्या क़ुरआन में क्रमिक ज्ञान का अभाव है? 39
5. क्या क़ुरआन में अन्तर्विरोध है? 44
6. क्या क़ुरआन की शिक्षाओं में असहिष्णुता और क्रूरता है? 49
7. क्या क़ुरआन का दण्ड-विधान क्रूरतापूर्ण है? 55
8. क़ुरआन की व्याख्या का अधिकार किसको है? 65

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है ।)

प्रस्तावना

क़ुरआन मजीद ईश्वरीय ग्रंथों में अंतिम ग्रंथ और सारे ईश-ग्रंथों का संरक्षक (उनकी शिक्षाओं को अपने अन्दर समाहित कर उनकी सुरक्षा करनेवाला) है। इससे पहले अनेक ईश-ग्रंथ संसार के विभिन्न भागों और विविध कालों में अवतरित हुए थे। समय और मनुष्य के हाथों वे विकृत होकर नष्टप्राय हो गए। उन सारे ग्रंथों को पुनर्जीवित और स्थायित्व प्रदान करने के लिए अंत में क़ुरआन मजीद अवतरित हुआ। पूर्व के सारे ईश-ग्रंथ अपने समय के संदेष्टा (पैग़म्बर) पर एक प्रतिष्ठित फ़रिश्ते जिब्रील द्वारा अवतरित हुए थे। यह फ़रिश्ता ईश्वर का संदेश मानव तक लाने के लिए ईश्वरीय आदेश से नियुक्त है। चालीस वर्ष की अवस्था में अंतिम संदेष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) पर मक्का शहर में क़ुरआन अवतरित होना आरंभ हुआ। अवतरण की स्थिति यह होती थी कि फ़रिश्ते हज़रत जिब्रील (अलै.) मानव का रूप धारण करके पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के सामने प्रकट होते और ईश्वर की वाणी पढ़कर उन्हें सुनाते और कभी प्रकट हुए बिना परोक्ष रूप से भी ईश-वाणी सुनाते। स्पष्ट आवाज़ और संकेतों से पहचानकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) उसे ग्रहण करते। फिर उसी समय आप उस ईश-वाणी को कंठस्थ कर लेते और तत्काल अपने सहयोगियों को बुलाकर उसे लिपिबद्ध कराकर रख लेते।

इस प्रकार क़ुरआन मजीद का छोटा-छोटा अंश समय-समय पर अवतरित होता रहा और यादों व लेखनी के माध्यम से एकत्र होता रहा। उसका अवतरण एक ओजस्वी भाषण के रूप में होता था। उसे लोगों के समूह में ईश्वरीय आह्वान के तौर पर सुनाया जाता और प्रतिदिन नमाज़ों में पढ़ा जाता था। इस तरह उसका प्रचार-प्रसार तेज़ी से होने लगा। उस समय के सारे मुसलमान इस कार्य में पूरी तन्मयता से भाग लेते थे।

मुहम्मद (सल्ल॰) के 63 वर्ष की अवस्था में निधन होने के वर्ष तक इस प्रकार छोटे-बड़े ओजस्वी भाषण के रूप में क़ुरआन मजीद की आयतें अवतरित होती रहीं। इस प्रकार क़ुरआन को पूर्ण होने में 23 वर्ष लगे। पैग़म्बर (सल्ल॰) क़ुरआन की आयतें लोगों को सुनाते। उनके गूढ़ अर्थों की व्याख्या करते। उसकी शिक्षा के अनुरूप आचरण करके व्यावहारिक नमूना (आदर्श) लोगों के सामने प्रस्तुत करते। कोई ऐसा आदेश क़ुरआन मजीद का न था जिसे व्यवहार में न लाया गया हो।

क़ुरआन मजीद की आयतें विशिष्ट परिस्थितियों में अवतरित होती रही थीं। अवतरण के क्रम से उनका क़ुरआन मजीद में लिपिबद्ध करना उपयोगी न होता। अतः उनमें क्रम और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए ईश्वरीय आदेश के अनुकूल पैग़म्बर (सल्ल॰) स्वयं ही आयतों का स्थान निश्चित कर देते थे। जब लिपिक के द्वारा आयतों को लिखवाते तो यह भी बतला देते कि उन आयतों का स्थान अमुक आयतों के आगे और अमुक आयतों के पीछे है। इस प्रकार क्रमबद्ध क़ुरआन पूरा हो गया और उसी क्रम के अनुसार पढ़ने, याद करने और लिखने की प्रथा का प्रचलन हो गया।

क़ुरआन मजीद आरंभिक समय में जिस लिपि में लिखा गया उसी लिपि में अब तक लिखने का आदर्श स्थापित हो चुका है। अक्षरों की साज-सज्जा और उन्हें सुन्दर व सुडौल बनाने की कई रीतियाँ बाद में ईजाद की गईं। लेकिन अक्षरों की मिलावट और हिज्जा (वर्तनी और वर्ण-विन्यास) में प्राचीन रूपों का ही अनुवर्तन किया गया।

संसार की किसी भी भाषा के शब्दार्थ और शैलियों में सदियों बाद परिवर्तन का आ जाना अवश्यम्भावी है। यद्यपि क़ुरआन मजीद का दैनिक जीवन से गहरा सम्बन्ध होने के कारण अरबी भाषा में बड़ी हद तक स्थैर्य और नियंत्रण आ गया है। फिर भी लिपि और ध्वनि में पूर्णतः स्थैर्य के बावजूद अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच से थोड़ा-बहुत प्रभावित होना स्वाभाविक है। इस कठिनाई को दूर करने और अरबी से इतर भाषाओं में उसकी शिक्षा फैलाने के लिए हर युग में उसकी टीकाएँ (तफ़सीरें) लिखी जाती रही हैं। उनकी मदद लिए बिना क़ुरआन मजीद की

शास्त्रीय भाषा और शैली का आनन्द लेना तो दूर, उसके भावार्थ का समझना भी बहुत कठिन कार्य है। सारे प्राचीन और शास्त्रीय ग्रंथों के साथ यह समस्या समान रूप से जुड़ी रहती है। एक ग़ैर-मुसलिम ही नहीं बल्कि एक सामान्य ज्ञान रखनेवाला मुसलिम भी क़ुरआन का अध्ययन करते समय अनेक स्थलों पर उलझन महसूस करता है। इस कारण कुछ स्वाभाविक रूप से भी कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं। इसी के साथ कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो आक्षेप लगाने और कीड़े निकालने के उद्देश्य से ही किसी किताब का अध्ययन करने के लिए प्रेरित होते हैं। उनके भ्रमित होने की संभावना और अधिक हो जाती है। संसार में आधिकारिक रूप से यह स्वीकार किया जाता रहा है कि क़ुरआन मजीद द्वारा प्रस्तावित 'इस्लाम धर्म' एक सुनियोजित सशक्त व्यवस्था का नाम है। इसकी समकक्षता में किसी अन्य विधान या व्यवस्था को नहीं रखा जा सकता। फिर भी भ्रम पैदा करनेवाले आरोपों और आक्षेपों का यह सिलसिला बन्द होने का नाम नहीं लेता। शायद यह उनकी मजबूरी है कि वे ऐसा ही करें। लेकिन उनके भ्रमजाल में फँसनेवाले साधारण लोगों की भी यह ज़िम्मेदारी है कि वे खुले दिल और दिमाग़ से किसी पूर्वाग्रह के बिना क़ुरआन मजीद का अध्ययन करें। इसकी शिक्षाएँ इतनी सरल और सुबोध हैं कि एक साधारण व्यक्ति को भी आकर्षित करती हैं और उनका मन मोह लेती हैं। कम ही ऐसे स्थल हैं जहाँ उलझनें आएँगी; क्योंकि कृपालु ईश्वर ने हर सतह की बुद्धिवाले लोगों को ध्यान में रखकर इसे सरल और सुबोध बनाया है। कोई भी मनुष्य उसकी कृपा से वंचित कैसे रह सकता है! इसका एलान क़ुरआन मजीद स्वयं करता है :

> "और हमने क़ुरआन को अनुकूल और सहज बना दिया है नसीहत हासिल करने के लिए। फिर क्या है कोई नसीहत हासिल करनेवाला?"
>
> — क़ुरआन 54 : 17, 22, 32, 40

क़ुरआन मजीद का अध्ययन करते समय जगह-जगह जो कठिनाइयाँ और शंकाएँ उत्पन्न होती हैं, उन सबका जवाब देना एक श्रमसाध्य और व्यापक कार्य है। इसके लिए उत्तम कोटि की टीकाओं (तफ़सीरों) का अध्ययन-मनन करना चाहिए। यहाँ हमने मोटे तौर पर उन आक्षेपों को लिया है जिनसे क़ुरआन की

असल हैसियत और उपादेयता पर प्रश्न चिह्न उत्पन्न होते हैं। इन आक्षेपों का जवाब और संदेहों का निवारण भी अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसका कारण यह है कि आज के व्यस्त संसार में विचारशील पुस्तकों के पढ़ने का समय बहुत कम लोग निकाल पाते हैं और उसपर धन व्यय करना भी कम ही चाहते हैं।

आशा है कि इस संक्षिप्त और साधारण प्रयास से शंकाओं के समाधान में मदद मिलेगी तथा उत्तरोत्तर और अधिक अध्ययन करने और जानने की प्रेरणा भी प्राप्त होगी। यह पुस्तिका ऐसे ही जिज्ञासुओं के लिए लिखी गई है। अपने उद्देश्यों में इसे कुछ भी सफलता मिली तो हमारा परिश्रम सार्थक होगा।

अंत में दयानिधि ईश्वर से प्रार्थना है कि क़ुरआन मजीद के मार्गदर्शन के सम्बन्ध में उत्पन्न कठिनाइयों और भ्रमों को दूर करने के इस तुच्छ प्रयास को सफलता प्रदान करे!

नई दिल्ली — विनीत

29-7-2001 — सनाउल्लाह 'सुमन'

क्या क़ुरआन इश्वरीय ग्रंथ है?

संदेह : *क़ुरआन ईश्वर द्वारा अवतरित ग्रंथ नहीं, बल्कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) की रचना है।*

क़ुरआन मजीद के विषय में सारे मुसलमानों का यह विश्वास है कि वह ईश्वर द्वारा अवतरित ग्रंथ है। यह एक बहुत बड़ा दावा है। हमें इसकी समीक्षा करनी है कि क्या यह दावा तर्कों और प्रमाणों पर आधारित है या श्रद्धा के वशीभूत होकर एक कोरी कल्पना कर ली गई है? चूँकि अधिकतर धर्मों की बहुत-सारी आस्थाएँ कल्पना की उड़ान और बिना सिर-पैर की होती हैं, जिनके पीछे कोई प्रमाण नहीं होता। इसलिए इतने बड़े दावे की तर्कपूर्ण समीक्षा करना और उसके पक्ष-विपक्ष में दिए जानेवाले प्रमाणों की जाँच करना बहुत ज़रूरी है।

किसी दावे को सिद्ध करने के लिए मुख्य रूप से दो प्रकार के साक्ष्य या प्रमाण जुटाए जाते हैं। एक उस दावे को सिद्ध करनेवाले बाहरी प्रमाण जिसे 'वाह्य साक्ष्य' कहते हैं। और दूसरे, उस दावे को पुष्ट करनेवाले लक्षण जो उसके अन्दर निहित हों, उसे 'अन्तः साक्ष्य' कहते हैं। इन दोनों प्रमाणों के अतिरिक्त ऐतिहासिक निरन्तरता को भी सहायक प्रमाण माना जाता है। क्रम से उक्त तीनों प्रकार के प्रमाणों की समीक्षा यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

(क) वाह्य साक्ष्य

(1) **पैग़म्बर की गवाही** – बाहरी साक्ष्यों और प्रमाणों में पहला और प्रमुख प्रमाण पैग़म्बर की यह गवाही है कि उसके पास फ़रिश्ते ने आकर यह बताया कि यह ईश्वर की वाणी है जो तुम्हारे ऊपर अवतरित की जा रही है ताकि इस ज्ञान को सारे लोगों तक तुम पहुँचाओ।

"उनसे कहो कि इसे तो रूहुल क़ुदुस (पाक फ़रिश्ते) ने ठीक-ठीक मेरे रब की ओर से क्रमशः उतारा है, ... ।" —क़ुरआन 16 : 102

"हमने पहले भी रसूलों को स्पष्ट प्रमाण और किताबें देकर भेजा था। और अब यह याददिहानी (क़ुरआन) तुमपर उतारा है ताकि तुम लोगों के सामने उस शिक्षा को स्पष्ट कर दो जो लोगों के लिए उतारी गई है और ताकि लोग चिन्तन और विचार करें।" —क़ुरआन 16 : 44

"इस (क़ुरआन) को हमने सत्य पर आधारित उतारा है और सत्य ही के साथ यह उतरा है। और ऐ नबी, तुम्हें हमने सिर्फ़ इसी काम के लिए भेजा है कि सत्य माननेवाले को शुभ-सूचना दे दो और (जो न माने उसे) चेतावनी दे दो।" —क़ुरआन 17 : 105

ये आयतें तो क़ुरआन के अन्तः साक्ष्यों में से हैं, लेकिन इसी दावे के साथ पहले ही दिन से पैग़म्बर (सल्ल.) ने काम शुरू किया और यह बात इस्लाम की मूल धारणा में से है।

इन अवतरित वाक्यों को याद करके पैग़म्बर ने स्वयं उसके आदेशों का अनुसरण किया और अन्य लोगों तक उस पैग़ाम को पहुँचाया।

पैग़म्बर के आचरण की निश्छलता, पवित्रता, निस्स्वार्थता और सच्चाई को देखते हुए उसकी गवाही पर विश्वास किया गया।

"इससे पहले मैं तो तुम्हारे बीच एक लम्बे समय से अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। फिर भी क्या तुम बुद्धि से काम नहीं लेते (अर्थात मेरे आचरण और सत्यनिष्ठता को जानते और गवाही देते हो, फिर भी झुठलाते हो)? फिर उससे बढ़कर अत्याचारी और कौन होगा जो एक झूठी बात रचकर अल्लाह की ओर से प्रस्तुत करे या अल्लाह की वास्तविक आयतों को झुठलाए? (अर्थात यदि मैं अल्लाह के नाम पर झूठ घड़ता हूँ तो मैं सबसे बड़ा अपराधी हूँ। दूसरी स्थिति में सत्य को तुम झुठलाकर सबसे बड़े अपराधी बनते हो। ख़ूब अच्छी तरह जान लो कि) वास्तव में

अपराधी कभी सफलता नहीं पा सकते।"

—क़ुरआन 10 : 16, 17

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के द्वारा प्रेषित ईश्वरीय ज्ञान तो लोगों को आकर्षित करता ही था। उसी के साथ उनका व्यक्तिगत स्वभाव, सार्वजनिक सेवा, मानव-प्रेम, दयालुता, सत्यनिष्ठता आदि चारित्रिक गुणों ने पहले ही से लोगों का दिल मोह लिया था। निर्विवाद रूप से उन्हें अपने समाज का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मान लिया गया था। उनकी सूझ-बूझ पर सबको भरोसा था। लेकिन क़ुरआन की शिक्षा से उनकी बनी-बनाई सामाजिक चौधराहट और परंपरा को ठेस लगती थी। यही कारण है कि अधिकतर बड़े लोगों ने विरोध किया और पीड़ित व दलित लोगों ने आगे बढ़कर स्वीकार किया। धीरे-धीरे झूठे गर्व के मैल पर सत्य का साबुन चलता रहा और शीघ्र ही पूरा समाज धवल रूप धारण करने को आतुर हो गया। दूर-दूर से फ़ौज-दर-फ़ौज लोग आकर इस्लाम की शिक्षा में दीक्षित होने लगे।

संकट की स्थिति में भी झूठ और धोखे से काम नहीं लेनेवाले पैग़म्बर के बारे में यह कल्पना करना भी धृष्टता है कि उन्होंने ईश्वर के बारे में इतना बड़ा झूठ घड़कर मानव को धोखा दिया हो। ऐसी धोखाधड़ी कोई स्वार्थ का वशीभूत व्यक्ति ही कर सकता है और वह धोखा बहुत दिनों तक छुपा नहीं रह सकता। ईश्वर के नाम पर प्रस्तुत की गई किताब की शिक्षाएँ स्वयं इसका पोल खोल देतीं। साथ ही किसी सांसारिक लाभ, जातीय लाभ या सुख-संपत्ति के लोभ से दूर रहते हुए सारे इनसानों को समानता और भाईचारे के सूत्र में बाँधनेवाले पैग़म्बर के आचरण से ऐसी घृणित धोखेबाज़ी का कोई मेल संभव नहीं। पैग़म्बर के जीवन को परखने और उसका सत्य की कसौटी पर पूरा उतरने के बाद शंकाओं के बादल अपने आप छँट जाते हैं।

पैग़म्बर के जीवन की परीक्षा और सत्य की कसौटी पर जाँच करना जितना संभव उनके सामने मौजूद लोगों के लिए था, उतना ही बाद के युगों के लिए भी है। उनके जीवन की सारी घटनाएँ, उनका आचरण, चरित्र, शिक्षाएँ ---------- यहाँ तक कि उनका सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना, चलना-फिरना आदि जीवन के मामूली क्रिया कलाप (घर से बाहर तक) इतिहास के पुष्ट प्रमाणों के साथ सुरक्षित

हैं। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि आज तक पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के सिवा दुनिया के किसी व्यक्ति के जीवन का हर पहलू पर्याप्त प्रमाणों के साथ सुरक्षित नहीं है।

(2) भविष्यवाणियाँ – दूसरा प्रबल प्रमाण क़ुरआन के ईश्वरीय ग्रंथ होने का यह है कि बड़ी विषम परिस्थितियों में क़ुरआन ने कुछ भविष्यवाणियाँ कीं, जिनके पूरे होने के लक्षण या संभावनाएँ उस समय नहीं दीखती थीं। मानव-बुद्धि उन्हें सर्वथा असंभव समझती थी। लेकिन समय ने उन सबको पूरा होते देखा। उदाहरण के लिए इतिहास की दो बड़ी घटनाएँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

(i) उस समय की दो महान राजनीतिक शक्तियाँ क़ैसर (रूम के सम्राट की उपाधि) और किसरा (ईरान के सम्राट की उपाधि) की थीं। किसरा ने क़ैसर को बुरी तरह पराजित कर दिया। क़ैसर की सत्ता एकेश्वरवादी धर्म पर आधारित थी जबकि किसरा की सत्ता बहुदेववादी धर्म पर। स्वाभाविक रूप से अरब के बहुदेववादी बुत-परस्तों के हौसले बढ़ गए और वे पैग़म्बर तथा उनके अनुयायियों पर अत्याचार में वृद्धि करने लगे। उनपर ताने कसे जाने लगे और उनका काम तमाम करने की भरपूर तैयारी होने लगी। ऐसे अवसर पर ईश्वर ने पैग़म्बर (सल्ल॰) और उनके अनुयायियों को सान्त्वना देने के लिए रूम की विजय की स्पष्ट शब्दों में भविष्यवाणी की। दस साल के अन्दर इस घटना का पूर्ण होना नियत कर दिया गया। चूँकि यह बात लोगों के लिए सर्वथा असंभव प्रतीत होती थी, इसलिए इसका उपहास किया जाने लगा। मुसलमान ईश्वरीय वाणी पर ईमान रखते थे। अतः हज़रत अबू बक्र ने मक्का के सरदार से सौ ऊँटों की हार-जीत की बाज़ी तय कर ली। नौवें साल में यह भविष्यवाणी पूर्ण हो गई। रूम ने ईरान को पराजित कर दिया।

> "अलिफ़-लाम-मीम। रूम के लोग निकटवर्ती क्षेत्र में पराजित हो गए हैं, और अपनी इस पराजय के बाद कुछ ही वर्षों में वे विजय प्राप्त कर लेंगे। अल्लाह ही का आदेश चलता है पहले भी और बाद में भी। और वह दिन वही होगा जबकि अल्लाह के द्वारा प्रदान की गई विजय पर उसके आज्ञाकारी (मुस्लिम) ख़ुशियाँ मनाएँगे। अल्लाह जिसकी चाहता है मदद करता है और वह सर्वशक्तिमान है और दयालु है। यह वादा

अल्लाह ने किया है, अल्लाह कभी अपने वादे से पीछे नहीं हटता, लेकिन अधिकतर लोग जानते नहीं।" —क़ुरआन 30 : 1-6

यह भविष्यवाणी सन् 2 हिजरी में पूरी हुई जब रूमियों ने ईरानियों पर विजय पाई और उसी समय बद्र के मैदान में पहली लड़ाई में मुसलमानों ने भी बहुदेववादियों पर भारी विजय पाई।

(ii) मक्का के जीवन में पैग़म्बर (सल्ल॰) और उनके अनुयायियों को बहुदेववादियों ने बहुत सताया। उनका चलना-फिरना, लेन-देन, व्यापार आदि सब पर प्रतिबन्ध लगा दिए। आबादी से अलग एक घाटी में उन्हें घेरकर विवश कर दिया। भूख-प्यास मिटाने के लिए उन्हें पेड़ों के पत्ते और सूखे चमड़े पानी में भिगोकर खाने पड़े। दूध-पीते बच्चों के करुण चीत्कार सुनकर मक्का के कुछ उदार लोग रातों में अपने सरदारों से छुपकर भेड़-बकरियों का दूध वहाँ पहुँचा देते थे। कैसी भयानक परिस्थिति थी, कल्पना की जा सकती है! ऐसी स्थिति में भी अडिग रहते हुए अपना काम जारी रखने का आदेश ईश्वर ने पैग़म्बर (सल्ल॰) को दिया। साथ ही यह सान्त्वना और ख़ुशख़बरी भी कि ये संकट के बादल बहुत जल्द छँट जाएँगे। हम चारों ओर से इनकी धरती समेटकर उनको संकुचित कर रहे हैं। वे अपने घर में ही विवश और तुम्हारे अधीन हो जाएँगे।

"क्या ये लोग देखते नहीं हैं कि हम इस धरती पर चले आ रहे हैं और इसका दायरा हर ओर से संकुचित करते चले आते हैं? (अर्थात् दुष्ट लोग अपनी दुष्टता के कारण लोगों की निगाह में गिरते चले जा रहे हैं और सत्य की प्रतिष्ठा लोगों के दिलों में गहरी होती जा रही है। फिर भी दुष्ट लोग अपनी शक्ति के भ्रम में पड़े हुए हैं।) अल्लाह शासन कर रहा है, कोई उसके निर्णय पर रोक लगानेवाला नहीं है और उसे हिसाब चुकाते देर नहीं लगती। (अर्थात् बुराई का दुष्परिणाम शीघ्र प्रकट होनेवाला है।) इन लोगों से पहले जो लोग गुज़र चुके हैं, वे भी बड़ी-बड़ी चालें चल चुके हैं। लेकिन असल निर्णायक चाल तो पूरी की पूरी अल्लाह के हाथ में है। वह जानता है कि कौन क्या कुछ अर्जित कर रहा है और शीघ्र ही सत्य का इनकार करनेवाले ये लोग देख लेंगे कि परिणाम किसका उत्तम होता है। ये इनकार करनेवाले कहते हैं कि तुम अल्लाह की ओर से भेजे हुए

नहीं हो। कह दो, मेरे और तुम्हारे बीच अल्लाह की गवाही पर्याप्त है और फिर उस व्यक्ति की गवाही जो ईश-ग्रंथों का ज्ञान रखता है।"

— क़ुरआन 13 : 41-43

"क्या इन्हें दिखाई नहीं देता कि हम धरती को (उनके लिए) हर ओर से संकुचित करते चले आ रहे हैं? फिर क्या वे विजयी हो जाएँगे? इनसे कह दो, : मैं तो वह्य (ईश-संकेत) के आधार पर तुम्हें सावधान कर रहा हूँ। —— मगर बहरे पुकार को नहीं सुना करते जबकि उन्हें सावधान किया जाए।" — क़ुरआन 21 : 44-45

क़ुरआन का ऐसा स्पष्ट आश्वासन विरोधी लोगों की निगाह में एक कोरी कल्पना से अधिक कुछ न था। लेकिन सिर्फ़ आठ साल के अन्दर ऐसा परिवर्तन आया कि शक्ति का संतुलन बदल गया। मक्का के सारे ही विरोधी लोग अपने कुकृत्यों पर पछताए बिना न रह सके। उन्होंने सत्य को पहले भी पहचाना था लेकिन अपनी हेकड़ी क़ायम रखना चाहते थे। अब उन्होंने पहचाना भी और स्वीकारा भी।

(3) ज्ञान-ज्योति का आविर्भाव — तीसरा प्रमाण यह है कि क़ुरआन ने जिन विषयों की शिक्षा दी, उस समय के ज्ञान-जगत् में कहीं उसकी कोई चर्चा नहीं थी। उनमें सिर्फ़ भौतिक ज्ञान-विज्ञान ही की बातें नहीं थीं कि यह कहा जा सके कि एक प्रखर बुद्धि और उर्वरा-शक्ति से परिपूर्ण मस्तिष्क ने उनकी कल्पना कर ली। उन शिक्षाओं में जीवन के विविध पहलुओं पर आधारित गंभीर समस्याओं के समाधान और इतिहास की विलुप्त कड़ियों का सजीव चित्रण भी सम्मिलित था। ईश्वरीय मार्गदर्शन के बिना कोई बुद्धिमान कल्पना से उन बातों का सच्चा और पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है। इसलिए ईश्वरीय ज्ञान को ही उसका एक मात्र साधन और स्रोत मानना पड़ता है।

"और वही है जिसने आसमानों और धरती को छह दिनो में पैदा किया, जबकि इससे पहले उसका 'अर्श' (सल्तनत) पानी पर था, ताकि तुम्हारी परीक्षा करे कि तुममें से कौन उत्तम आचरण करता है।"

—क़ुरआन 11 : 7

"और अल्लाह ने ही हर जीव को पानी से पैदा किया ------।"

—क़ुरआन 24 : 45

"और हमने पानी से जीवधारियों को पैदा किया।" —क़ुरआन 21 : 30

सृष्टि के आरंभ में सारे पदार्थ द्रवित गैसीय अवस्था में थे। फिर यह कि सारे जीवधारियों के जीवन का मुख्य अंश जल है। इस बात की जानकारी आधुनिक विज्ञान ने दी है। प्राचीन काल में यह बात इतनी स्पष्ट नहीं थी। उस समय क़ुरआन ने दो टूक शब्दों में इन बातों की सूचना दी।

"क्या वे लोग जिन्होंने (सत्य का) इनकार कर दिया है ध्यान नहीं देते कि ये सारे आकाश और धरती परस्पर मिले हुए थे, फिर हमने उनको अलग किया ----।" — क़ुरआन 21 : 30

वर्तमान सृष्टि के पूर्व की स्थिति के विषय में बड़े मतभेद हैं और इस विषय में वैज्ञानिकों की कई परिकल्पनाएँ हैं। लेकिन उनमें सर्वाधिक वैज्ञानिक मान्यता प्राप्त सिद्धान्त वही है जिसे Big Bang Theory कहते हैं जो उपर्युक्त आयत के अनुकूल है।

"सर्वोच्च है वह सत्ता जिसने सभी प्रकार की चीज़ों के जोड़े पैदा किए चाहे वे धरती की वनस्पति में से हों या स्वयं उनकी अपनी जाति (मानव) में से या उन वस्तुओं में से जिनको वे जानते तक नहीं।"

— क़ुरआन 36 : 36

ज्ञात-अज्ञात सभी वस्तुओं में नर-नारी जैसे जोड़े पाए जाते हैं, यहाँ तक कि निर्जीव वस्तुओं में भी धनात्मक और ऋणात्मक प्रोटोन एवं इलेकट्रोन मौजूद हैं। उनके बिना कोई वस्तु अस्तित्व में नहीं आ सकती। यह आधुनिक विज्ञान की खोज है और इस वास्तविकता को क़ुरआन ने डेढ़ हज़ार साल पहले स्पष्ट कर दिया था।

"इनके लिए एक और निशानी रात है। हम उसके ऊपर से दिन हटा देते हैं तो इनपर अंधेरा छा जाता है। और सूरज, वह अपने ठिकाने की

ओर चला जा रहा है। यह सर्वशक्तिमान ज्ञान सम्पन्न हस्ती (ईश्वर) का निश्चित किया हुआ हिसाब है। और चाँद, उसके लिए हमने मंज़िलें निश्चित कर दी हैं। यहाँ तक कि उनसे गुज़रता हुआ वह खजूर की सूखी शाखा की तरह हो जाता है। न सूरज के बस में यह है कि वह चाँद को जा पकड़े और न रात दिन से आगे बढ़ सकती है। सब एक-एक परिधि में तैर रहे हैं।" — क़ुरआन 36 : 37-40

"और वह अल्लाह ही है जिसने रात और दिन बनाए और सूरज व चाँद को पैदा किया। सब एक-एक परिधि में तैर रहे हैं।"

—क़ुरआन 21 : 33

जिस समय क़ुरआन उतरा उसके बहुत बाद तक खगोलविद यह मानते थे कि पृथ्वी स्थिर है और सूरज, चाँद व सितारे उसके चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। गैलिलियो ने यह सिद्ध किया कि सूर्य स्थिर है और धरती गतिशील है। उसकी यह खोज ईसाई पादरियों की मान्यता के विपरीत थी। अतः उसे दण्डित किया गया। अब संसार के सारे वैज्ञानिक यह स्वीकार कर चुके हैं कि सारे ही आकाशीय पिण्ड और आकाश गंगाएँ निरन्तर गतिशील हैं।

क़ुरआन ने डेढ़ हज़ार साल पहले सारे पिण्डों के अपने-अपने कक्ष (Orbit) में निरन्तर चलते रहने और उनकी गति के संतुलित होने की घोषणा स्पष्ट शब्दों में कर दी थी।

"हमने धरती को फैलाया और उसमें पहाड़ जमाए। उसमें हर प्रकार की वनस्पति ठीक-ठीक नपे-तुले परिमाण के साथ उगाई और उसमें जीविका के साधन उपलब्ध किए, तुम्हारे लिए भी और उन बहुत-सी सृष्टियों के लिए भी जिनकी आजीविका तुम्हारे वश में नहीं है। कोई चीज़ ऐसी नहीं जिसके भंडार हमारे पास न हों। और जिस चीज़ को भी हम उतारते हैं (अर्थात् रचना करते हैं) एक नियत परिमाण में उतारते हैं।" — क़ुरआन 15 : 19-21

संसार की हर वस्तु एक संतुलित परिमाण में है जिससे धरती पर जीवन के साधन उपलब्ध होते हैं। यह बात अब वैज्ञानिकों के लिए सिर्फ़ मान्य ही नहीं है

बल्कि ईश्वरीय व्यवस्था में असंतुलन पैदा करके मानव जीवन के लिए जो विपत्ति खड़ी कर दी गई है उसके समाधान के लिए वे विश्व भर में क्रियाशील हो रहे हैं। 'पर्यावरण की सुरक्षा' और प्रदूषण को दूर करने के नाम पर विश्व में करोड़ों डालर ख़र्च किया जा रहा है।

ईश्वरीय मार्गदर्शन से मुँह मोड़कर धन और सुख की लोलुपता में जंगलों और पेड़-पौधों का सफ़ाया, जानवरों की नस्लों का सफ़ाया, धरती के भीतर की खनिज संपदा और जल का अंधाधुंध दुरुपयोग, ध्वनि और धुआँ से वातावरण को दूषित करना, फ़ैक्टरियों की गन्दगी और एटमी परीक्षणों से जल, थल और आकाश को विषाक्त करना आदि वह पाप हैं जो पिछली दो सदियों में मानव ने खुलकर बेरोक-टोक किया है। इसी प्रकार वैचारिक और नैतिक प्रदूषण से भी संसार को नरक बना दिया गया है। इन सब फ़सादों और विकृतियों से मानव-समाज को तभी बचाया जा सकता है जब मानवोपयोगी प्राकृतिक संतुलन जीवन में स्थापित किया जाए। उसी संतुलित मार्ग की ओर क़ुरआन बुलाता है।

"वही है जिसने तुम्हारे लिए हरे-भरे पेड़ से आग पैदा कर दी और तुम उससे अपने चूल्हे जलाते हो।" — क़ुरआन 36 : 80

हरे-भरे पेड़ों से आग की उत्पत्ति शायद पहले लोगों की समझ में कम ही आती होगी। मगर अब उसके कई अर्थ खुलने लगे हैं। साधरण अर्थ तो यही है कि पेड़ों के घर्षण से आग जल जाती है। जंगलों में तेज़ तूफ़ान के आने पर भयंकर आग लग जाती है। लेकिन वैज्ञानिक खोजों से यह पता चला है कि अति प्राचीन काल के बड़े-बड़े जंगल भूकम्पों या अन्य घटनाओं से धरती के नीचे धँस गए। वही कोयला, तेल, गैस आदि की खदान में परिवर्तित हो गए। वही आज संसार के लिए ईंधनों के भंडार हैं। चूल्हा से लेकर बड़ी फ़ैक्टरियाँ और विभिन्न इंजनों के चलाने में ईंधन और आग का साधन वही हरे पेड़ हैं।

"उसने धरती में पहाड़ों के खूँटे गाड़ दिए ताकि धरती तुमको लेकर लुढक न जाए।" —क़ुरआन 16:15, 21:31, 31:10

धरती के वातावरण में संतुलन स्थापित किए रहना हमारे जीवन के लिए

परम आवश्यक है। इसके लिए पहाड़ों का निर्माण प्राचीन काल के लोगों के लिए अद्‌भुत भले रहा हो मगर आज धरती की परिधि, मोटाई, भार आदि का वैज्ञानिक आकलन करनेवाले इसकी प्राकृतिक स्थिति की वैज्ञानिक बनावट का समर्थन करते हैं।

"और वह कौन है जिसने धरती को निवास के योग्य बनाया और उसके अन्दर नदियाँ बहा दीं और उसमें (पहाड़ों के) खूँटे गाड़ दिए और पानी के दो भण्डारों के बीच परदे डाल दिए?" —क़ुरआन 27:61

"दो महासागरों को उसने छोड़ दिया कि परस्पर मिल जाएँ, फिर भी उनके बीच एक परदा रुकावट है जिसका वे अतिक्रमण नहीं करते।"
—क़ुरआन 55:19-20

पैग़म्बर ने कभी समुद्र की यात्रा नहीं की और न ही जलधाराओं का कभी वैज्ञानिक निरीक्षण किया। उस समय के विद्वान वैज्ञानिकों को भी इस वास्तविकता की ख़बर नहीं थी कि जलधाराओं में मीठे और खारे जल को पृथक करनेवाला वह कौन-सा परदा है। जल की सान्द्रता, घनत्त्व, सतह के तनाव (surface Tension) इत्यादि की जानकारी के बाद अब उसके कारण का पता लग गया है। लेकिन इस प्राकृतिक नियम को क़ुरआन ने बहुत पहले स्पष्ट शब्दों में उद्‌घाटित कर दिया।

"और जब (समुद्र में) उन लोगों पर एक मौज छाया-छत्रों की तरह उन्हें ढाँक लेती है तो वे अल्लाह को पुकारते हैं, अपने दीन और निष्ठा भाव से उसी के लिए एकाग्र होकर .....।" —क़ुरआन 31:32

यहाँ एक गंभीर मनोवैज्ञानिक भाव का रहस्योद्‌घाटन किया गया है। विपत्ति काल में जब सारे सहारों से कटकर मौत के मुँह में जाते हुए मनुष्य अपनी स्थिति पर विचार करता है तो वहाँ एक मात्र ईश्वर को ही सहायता के लिए पुकारता है। उस समय दृश्य और अदृश्य सारे सहारे जो उससे दूर होते हैं उन्हें पुकारने का वह साहस नहीं करता। यह एक ऐसी वास्तविकता है जिसकी गवाही संकट से बाहर आनेवाले

नास्तिकों ने भी दी है। और ऐसी घटनाएँ कितनों को ईमान लाने और अपने वास्तविक परमेश्वर के निकट आने में सहायक सिद्ध हुई हैं। उस स्थिति का विवरण ईश्वर ही प्रस्तुत कर सकता है।

"और वह अल्लाह ही है जिसने तुम्हारे लिए तुम्हारी जाति ही के जोड़े बनाए और उसी ने उन जोड़ों से तुम्हें पुत्र और पौत्र प्रदान किए..... ।"

—क़ुरआन 16:72

प्राचीन काल से अब तक विचारों का काफ़ी बदलाव हुआ है। मगर आज भी नर और नारी में भेद और नारी का शोषण जारी है। प्राचीन दार्शनिकों ने तो नारी को पुरुष जाति से अलग प्रकार की एक जाति माना। इस बात पर भी विवाद हुआ कि नारी के शरीर में आत्मा है या नहीं। धर्मग्रंथों ने नारी को पुरुष का विष और साँप-बिच्छू माना। उसके अस्तित्त्व को झूठ कहा गया। उससे दूर रहने और ब्रह्मचर्य का पालन करने को सदाचार कहा गया। यूरोप और भारत के धर्मों में उसका ऐसा ही चित्र प्रस्तुत हुआ है। लेकिन क़ुरआन ने उसे पुरुष की सजातीय ठहराया। मानव होने ही दृष्टि से दोनों को समान अधिकार प्रदान किए।

आज विज्ञान और इस्लाम के प्रभाव से सिद्धान्त रूप में तो सभी लोग नर-नारी को समान मानते हैं। लेकिन व्यावहारिक रूप से आज भी भेद-भाव है। खाना-पीना और लालन-पालन में भेद, विवाह में दहेज, नारी जाति की भ्रूणहत्या आदि आज हमारे समाज में सर्वविदित है। यूरोपीय सभ्यता ने उसे प्रदर्शनी और प्रचार की वस्तु और पुरुषों की वासना का शिकार बना दिया है।

"वह अल्लाह ही है जिसने तुम्हें एक जान से पैदा किया और उसी की जाति से उसका जोड़ा बनाया ताकि उसके पास चैन व सुकून प्राप्त करे ..... । "

—क़ुरआन 7:189

"और उस (अल्लाह) की निशानियों में से यह है कि उसने तुम्हारे लिए तुम्हारी ही जाति से जोड़े बनाए ताकि तुम उनके पास सुकून पा सको और तुम्हारे बीच प्रेम और दयालुता पैदा कर दी। निश्चय ही इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो सोच-विचार करते हैं।"

—क़ुरआन 30:21

पुरुष और नारी का वास्तविक सम्बन्ध और उसकी आवश्यकता और प्रकृति पर जो कुछ क़ुरआन ने विचार दिया आज विज्ञान से भी सिद्ध है। मगर इस प्रेमभाव और मधुर सम्बन्ध को इतना कटु बना दिया गया है कि अविवाहित रहने को श्रेष्ठता दी जाने लगी। और भी आगे बढ़कर समलैंगिक विवाह अर्थात् पुरुष-पुरुष और नारी-नारी का अप्राकृतिक विवाह का चलन भी हो रहा है। आज लिंग परिवर्तन करके नारियाँ पुरुष बनना चाहती हैं और नारी रहते हुए पुरुष से घोर घृणा करती हैं। यूरोपीय सभ्यता को पसन्द करनेवाले विद्वानों को विचार करना चाहिए कि ऐसा क्यों है।

क़ुरआन के मार्गदर्शन से अलग हटकर मनुष्य ने जो भी राह अपनाई है वह उसके लिए आत्मघाती सिद्ध हुइ है।

(4) अचानक ज्ञान-वृष्टि – पैग़म्बर के आरंभिक जीवन में लोग उन्हें एक निष्ठावान, ईमानदार और अमानतदार व्यक्ति के सिवा और कुछ नहीं जानते थे। उन्होंने कभी कोई गहरे ज्ञान की बात नहीं की और न ही ईश्वरीय प्रेरणा का कोई दावा किया। इसी स्थिति में जीवन के चालीस साल व्यतीत हो गए।

पैग़म्बर के जीवन-काल में उपलब्ध ज्ञान के साधनों का अभाव तो था ही, इसी के साथ उस समय के अधूरे और निकृष्ट स्रोतों तक पहुँचने का कोई साधन पैग़म्बर (सल्ल.) के पास नहीं था। वे स्वयं उस समय तक अक्षर-ज्ञान और किसी शिक्षा-केन्द्र से भी परिचित नहीं थे। चालीस साल की अवस्था में पैग़म्बर बनने के साथ ही एक विलक्षण ज्योति और ज्ञान का प्रस्फुटन हुआ।

> "अल्लाह ने तुमपर किताब और हिकमत (तत्वदर्शिता) उतारी है और तुमको वह कुछ सिखाया है जो तुम जानते न थे, और अल्लाह का तुमपर बहुत बड़ा अनुग्रह और कृपा है।" —क़ुरआन 4:113

> "और इसी प्रकार हमने अपने आदेश से एक रूह (फ़रिश्ता) की प्रकाशना तुम्हारी ओर की है। तुम्हें कुछ पता न था कि किताब क्या होती है और ईमान क्या होता है। मगर उस रूह को हमने एक प्रकाश बना दिया जिससे हम राह दिखाते हैं अपने बन्दों में से जिसे चाहते हैं। निश्चय ही

निश्चय ही तुम सीधे रास्ते की ओर मार्गदर्शन कर रहे हो ।"

—क़ुरआन 42:52

उपर्युक्त आयतों में किताब का ज्ञान और शिक्षाएँ अल्लाह की ओर से आने और उससे पहले पैग़म्बर की अनभिज्ञता और अनजान होने का स्पष्ट उल्लेख है। पहले से वे ईश-ग्रंथ और इस्लाम की शिक्षाओं से परिचित न थे। क्या कोई व्यक्ति अल्लाह के मार्गदर्शन के बिना क़ुरआन जैसी किताब और ऐसी संतुलित जीवन-व्यवस्था प्रस्तुत कर सकता है?

एक अनपढ़ व्यक्ति के द्वारा इतने उच्च और विविध ज्ञानों से पूर्ण पुस्तक की रचना करना, जिसमें साहित्यिकता की भी पराकाष्ठा हो, असंभव है।

अतः क़ुरआन मजीद को पैग़म्बर की रचना मानना असंभव कल्पना ही है।

(5) अलौकिक ज्ञान - क़ुरआन मजीद सिर्फ़ दुनिया और महसूस की जानेवाली चीज़ों के बारे में ही ज्ञान नहीं देता, बल्कि इस जगत् से परे अगोचर और ग़ैर-महसूस चीज़ों का भी ज्ञान कराता है और उस परोक्ष-सत्य की पुष्टि के लिए इसी संसार की गोचर वस्तुओं से ऐसे प्रमाण इकट्ठा कर देता है कि अगोचर वस्तुएँ भी नज़र के सामने जीवित रूप धारण कर लेती हैं। बिना ईश-प्रेरणा के अगोचर का ऐसा विस्तृत विवरण संभव नहीं हो सकता।

उदाहरण के लिए यहाँ भूतकाल के गर्त में पड़ी सदियों पुरानी घटना का सदृश्य वर्णन प्रस्तुत किया जाता है जो हज़रत ईसा (अलै॰) की पवित्र माता मरयम के बचपन का है।

"ऐ नबी! यह परोक्ष की सूचनाओं में से है जो हम तुमको प्रकाशना (वह्य) के द्वारा बता रहे हैं। वरना तुम उस समय वहाँ मौजूद न थे जब (हैकल के सेवक) यह फ़ैसला करने के लिए कि मरयम का संरक्षक कौन बने अपने-अपने क़लम फेंक रहे थे। (अर्थात 'क़ुरआ' डाल रहे थे।) और न तुम उस समय उपस्थित थे जब वे आपस में झगड़ रहे थे।" —क़ुरआन 3:44

इसी प्रकार भविष्य की घटना का सजीव वर्णन देखिए—

"और उस दिन सूर (नरसिंघा) फूँका जाएगा तो दे सब मर जाएँगे जो आकाशों और धरती में हैं सिवाय उसके जिसे अल्लाह जीवित रखना चाहे। फिर एक दूसरी फूँक मारी जाएगी और सहसा सब उठ खड़े होंगे और देखने लगेंगे। धरती अपने रब के नूर से जगमगा उठेगी और किताब (कर्मफल) रखी जाएगी और नबियों तथा सारे गवाहों को लाया जाएगा और लोगों के बीच ठीक-ठीक हक़ के साथ फ़ैसला कर दिया जाएगा और उनपर कोई ज़ुल्म न होगा। और प्रत्येक व्यक्ति को उसके किए कर्मों का भरपूर बदला दिया जाएगा। लोग जो कुछ भी करते हैं अल्लाह उसको ख़ूब जानता है।

जिन लोगों ने इनकार किया था वे गरोह के गरोह जहन्नम (नरक) की ओर हाँके जाएँगे, यहाँ तक कि जब वे वहाँ पहुँचेंगे तो उसके द्वार खोल दिए जाएँगे और उसके द्वारपाल उनसे कहेंगे : 'क्या तुम्हारे पास तुम्ही में से ऐसे रसूल नहीं आए थे जिन्होंने तुमको तुम्हारे रब की आयतें सुनाई हों और तुम्हें इस बात से डराया हो कि एक समय तुम्हें यह दिन भी देखना होगा?' वे उत्तर देंगे : 'हाँ, आए थे, मगर अज़ाब (यातना) का फ़ैसला इनकार करनेवालों पर चिपक गया।' कहा जाएगा, दाख़िल हो जाओ जहन्नम के दरवाज़ों में, यहाँ अब तुम्हें हमेशा रहना है। बड़ा ही बुरा ठिकाना है यह अहंकारियों के लिए!

और जो लोग अपने रब की अवज्ञा से डरते थे उन्हें गरोह के गरोह जन्नत (स्वर्ग) की ओर ले जाया जाएगा, यहाँ तक कि जब वे वहाँ पहुँचेंगे और उसके दरवाज़े पहले ही खोले जा चुके होंगे, तो द्वारपाल उनसे कहेंगे : 'सलाम हो तुम पर! बहुत अच्छे रहे, दाख़िल हो जाओ उसमें हमेशा रहने के लिए।' और वे कहेंगे : 'प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जिसने हमारे साथ अपना वादा सच कर दिखाया और हमको इस धरती का वारिस बना दिया। अब हम जन्नत में जहाँ चाहें अपनी जगह बना सकते हैं।' अतः क्या ही अच्छा बदला है कर्म करनेवालों का!"

— क़ुरआन 39:68-74

इस प्रकार के विवरणों से क़ुरआन भरा पड़ा है। भूत और भविष्य को वर्तमान की भाँति, जैसे कि आँखों देखी घटना का विवरण हो, कोई व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ सांगोपांग वर्णन नहीं कर सकता। सर्वकालदर्शी ईश्वर ही निश्चय के साथ ऐसा विवरण दे सकता है।

(6) **अकाट्य और स्थायी सत्य** - ज्ञान-विज्ञान के इतने विकास के बावजूद क़ुरआन द्वारा दी गई शिक्षाओं में से किसी का खंडन नहीं हो सका। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति ने क़ुरआन मजीद की असंभव प्रतीत होनेवाली मान्यताओं की भी पुष्टि की है। जो बातें पहले कभी मात्र कपोल-कल्पना समझी जाती थीं, आज वे विज्ञान का समर्थन पा गई हैं।

> इसी प्रकार बहुत-सी मान्यताएँ जिनका क़ुरआन खंडन करता है, विज्ञान द्वारा खंडित हो गई हैं।
>
> "जल्द ही हम उन्हें अपनी निशानियाँ बाहरी क्षेत्रों में (विश्व के व्यायक पटल पर) दिखाएँगे और खुद उनके अपने भीतर भी, यहाँ तक कि उनपर यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि यह क़ुरआन वास्तव में सत्य है। क्या यह बात काफ़ी नहीं है कि तुम्हारा रब हर चीज़ का साक्षी है।"
>
> —क़ुरआन 41:53

जीव विज्ञान की प्रगति और भौतिक रसायन तथा खगोल शास्त्रीय अध्ययन ने मानव के भीतर और विस्तृत विश्व में फैली ऐसी कितनी ही निशानियों को स्पष्ट किया है जिससे क़ुरआन की पुष्टि होती है।

(7) **व्यावहारिकता**— किसी भी सिद्धान्त का मात्र सिद्धान्त होना कुछ भी उपयोगी नहीं हो सकता जब तक व्यावहारिकता में उसकी संपुष्टि न हो। क़ुरआन की शिक्षाओं की व्यावहारिकता भी उसके सत्य और ईश्वरीय ग्रंथ होने का प्रमाण है। क़ुरआन मजीद की शिक्षाएँ मात्र कल्पना और मन बहलानेवाले विचारों का गुलदस्ता नहीं हैं। बल्कि उन्हें व्यवहार में लाना सरल और संभव है। साथ ही उनके अनुकूल परिणाम भी जीवन पर पड़ते हैं। फल-प्राप्ति के बाद भी उनपर सन्देह करना सर्वथा अनुचित है।

"और तुम सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लो और टुकड़े-टुकड़े न हो जाओ (अर्थात गरोहों में न बट जाओ)। अल्लाह की उस कृपा और एहसान को याद करो जो उसने तुमपर किया है। तुम एक दूसरे के दुश्मन थे। उसने तुम्हारे दिल जोड़ दिए और उसकी कृपा से तुम भाई-भाई बन गए। तुम आग से भरे एक गड्ढे के किनारे खड़े थे, अल्लाह ने तुमको उससे बचा लिया। इस प्रकार अल्लाह अपनी निशानियाँ तुम्हारे सामने प्रकट करता है, शायद कि इन चिह्नों से तुम्हें अपने कल्याण का सीधा मार्ग नज़र आ जाए।"

—क़ुरआन 3:103

यहाँ अरब की उस अराजकता का वर्णन हुआ है जिसमें हर क़बीला दूसरे क़बीले का दुश्मन था। उनका जीवन आग के अलाव में पड़े लोगों की तरह कष्टमय था। लेकिन इस्लाम की व्यवस्था से वे परस्पर भाई और मित्र बन गए। उनमें अपूर्व एकता पैदा हो गई। इस्लाम के इस प्रभाव को सभी महसूस कर रहे थे। अतः उन्हें इस समाज को नमूने के रूप में दिखाकर आह्वान किया जा रहा है कि इस व्यवस्था की अच्छाई को देखकर इससे जुड़ जाओ। यही तुम्हारे लिए कल्याणकारी मार्ग है। किनारे खड़े होकर तमाशा मत देखो।

(ख) अन्तः साक्ष्य

(1) ग्रंथ का अपना दावा— क़ुरआन मजीद खुद अपने बारे में स्पष्ट रूप से यह दावा पेश करता है कि वह ईश्वर की ओर से पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) पर अवतरित हुआ है। क़ुरआन मजीद ईश्वरीय ग्रंथ है, यह दावा बाहर से आरोपित नहीं है बल्कि क़ुरआन इसी दावे के साथ अपने को दुनिया के सामने पेश करता है। इस दावे के पक्ष में अकाट्य प्रमाण भी वह अपने अन्दर से प्रस्तुत करता है।

इसकी महत्ता उसी प्रकार है जिस प्रकार कोई व्यक्ति राज-दरबार से कोई आदेश लेकर आए और स्वयं अपना परिचय कराए कि वह कौन है और किस लिए, कहाँ से आया है। उसका आत्म-परिचय कराना इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसके बिना संभव है उसे एक साधारण व्यक्ति समझकर उसकी बातों पर लोग

विश्वास न करें। और साथ ही कोई अन्य साधारण व्यक्ति को भी लोग अपनी मरज़ी से राजाज्ञा के बिना उस पद पर आसीन कर दें। अतः उसका अपना दावा और आत्म-परिचय एक आवश्यक कार्य बन जाता है।

इसी प्रकार कोई साधारण व्यक्ति राजाज्ञा के बिना राज-दरबार से नियुक्त पद पर होने का दावा करे तो उसे उसका प्रमाण भी प्रस्तुत करना पड़ेगा। अन्यथा उसके आदेश का पालन न करने पर साधारण जनता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। प्रमाण के बिना आत्म-परिचय संदिग्ध और अमान्य ही रहेगा। इसलिए क़ुरआन मजीद ने अपने परिचय के साथ प्रमाण भी दिया है। ऐसा नहीं है कि कुछ लोगों ने अपने मनमाने ढंग से एक आस्था बना ली है और क़ुरआन को ईश्वरीय ग्रंथ का पद दे दिया हो।

"और यह किताब (क़ुरआन) हमने उतारी है, एक बरकतवाली किताब; तो तुम इसका अनुसरण करो और डर रखो ताकि तुमपर दया की जाए।" —क़ुरआन 6:155

"यह एक किताब है जो तुम्हारी ओर उतारी गई है — ऐ नबी, तुम्हारे दिल में इससे कोई झिझक न हो — इसके उतारने का उद्देश्य यह है कि तुम इसके द्वारा (लोगों को) सचेत करो और यह ईमान लानेवाले लोगों को नसीहत हो।" —क़ुरआन 7:2

"ऐ नबी, हमने यह किताब हक़ के साथ तुम्हारी ओर उतारी है ताकि अल्लाह ने जो (सीधा मार्ग) तुम्हें दिखाया है उसके अनुसार लोगों के बीच फ़ैसला करो..... ।" —क़ुरआन 4:105

"और ऐ नबी, हम चाहें तो वह सब कुछ तुम से छीन लें जो हमने प्रकाशना के द्वारा तुमको प्रदान किया है। फिर तुम हमारे मुक़ाबले में कोई सहयोगी न पाओगे जो इसे वापस दिला सके। ये जो कुछ तुम्हें मिला है तुम्हारे रब की अनुकम्पा से मिला है। वास्तविकता यह है कि उसका तुमपर बड़ा अनुग्रह है।" —क़ुरआन 17:86-87

(2) उत्कृष्ट ज्ञान और भाषा-शैली — क़ुरआन मजीद अपनी उत्कृष्ट व

अनुपम भाषा-शैली, अद्‌भुत साहित्यिक कलासंयोजन तथा विविध विषयों की मार्मिक जानकारी से ऐसा परिपूर्ण है कि स्वभावतः मानवीय कृति से उच्च स्तर का हो गया है। इसलिए क़ुरआन मजीद अनेक स्थलों पर मानव को चैलेंज करता है कि 'यदि तुम इसे ईश्वरीय ग्रंथ नहीं मानते तो ऐसी ही एक अन्य कृति या उसके कुछ अंश की ही समतुल्य रचना करके दिखाओ।' साहित्यिक उत्कृष्ठता के साथ ही परम सत्य के ज्ञान से परिपूर्ण 'क़ुरआन' के समतुल्य अन्य ग्रंथ या अंश प्रस्तुत करना मानव- शक्ति से बाहर है। इसके लिए उस अथाह ज्ञान और क्षमता की आवश्यकता है, जो सिर्फ़ ईश्वर के पास है। सारे मानव-समूह मिलकर भी ऐसी कोई रचना प्रस्तुत करने में सदैव असमर्थ रहेंगे। यह चैलैंज सिर्फ़ उसी समय के लोगों के लिए नहीं था, यह हमेशा के लिए है और रहेगा ।

"क्या ये कहते हैं कि इस व्यक्ति ने यह क़ुरआन ख़ुद ही रच लिया है? असल बात यह है कि ये ईमान नहीं लाना चाहते। अगर ये अपनी बात में सच्चे हैं तो इस क़ुरआन जैसी किताब बनाकर ले आएँ।"

—क़ुरआन 52:33-34

"क्या ये कहते हैं कि पैग़म्बर ने यह किताब ख़ुद घड़ ली है? कहोः अच्छा यह बात है तो इस जैसी घड़ी हुई दस सूरतें तुम बना लाओ और अल्लाह के सिवा जिसको चाहो मदद के लिए बुला सकते हो तो बुलालो, अगर तुम सच्चे हो।" —क़ुरआन 11:13

"क्या ये लोग कहते हैं कि पैग़म्बर ने इसे ख़ुद घड़ लिया है? कहो,: 'यदि तुम इस आरोप में सच्चे हो तो एक सूरा इस जैसी लिखकर लाओ, और एक ख़ुदा को छोड़कर जिस-जिस की मदद पर तुम समर्थ हो मदद के लिए बुला लो।" —क़ुरआन 10:38

"और अगर तुम्हें इस बात में सन्देह है कि यह किताब जो हमने अपने बन्दे पर उतारी है, यह हमारी है या नहीं, तो इसके अनुरूप एक ही सूरा बना लाओ। अपने सारे सहयोगियों को बुला लो, एक अल्लाह को छोड़कर बाक़ी जिस-जिस की चाहो मदद ले लो। अगर तुम सच्चे हो तो यह काम करके दिखाओ।" —क़ुरआन 2:23

पहले पूरे क़ुरआन के अनुरूप कोई किताब लाने के लिए कहा गया। जब इसका उत्तर नहीं मिला तो सिर्फ़ दस सूरतें बनाकर लाने के लिए कहा गया। यह भी संभव नहीं तो मात्र एक ही सूरा क़ुरआन जैसी बनाने के लिए कहा गया। अकेले नहीं तो सारे सहयोगियों के साथ मिलकर यह काम करने का चैलेंज़ किया गया। अरबी भाषा के हज़ारों बड़े विद्वान और लाखों रचनाएँ मौजूद हैं मगर क़ुरआन अपनी भाषा-शैली और ज्ञानविस्तार की दृष्टि से आज भी सर्वोपरि है।

> "कह दो कि अगर इनसान और जिन्न सब मिलकर इस क़ुरआन जैसी कोई चीज़ लाने की कोशिश करें तो न ला सकेंगे, चाहे वे सब आपस में एक-दूसरे के सहायक ही क्यों न हों।" —क़ुरआन 17:88

क़ुरआन के अवतरण-काल के भाषा-विशारदों और चोटी के विख्यात साहित्यकारों ने इस दावे के सामने घुटने टेक दिए। क़ुरआन को जादू का मंत्र कहकर बदनाम करने और अपना मुँह छुपाने की कोशिश की।

(3) **पैग़म्बर की भाषा से भिन्न** — क़ुरआन मजीद की भाषा और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰), जिनपर क़ुरआन अवतरित हुआ, की दैनिक बोल-चाल की भाषा में भी काफ़ी अन्तर है। पैग़म्बर के समकालीन व्यक्तियों ने भी इस वास्तविकता को स्वीकार किया है। पैग़म्बर के हज़ारों आदेश और उपदेश उनकी भाषा में आज तक हदीस की किताबों में सुरक्षित हैं। एक ही भाषा अरबी की इन दोनों शैलियों की तुलना आज भी की जा सकती है और की गई है। क़ुरआन मजीद तेइस वर्षों के दौरान थोड़ा-थोड़ा अवतरित होता रहा है। ऐसा संभव नहीं है कि एक व्यक्ति इतने लम्बे काल तक दो प्रकार की शैलियों में लगातार बात करता रहे। शैली-विज्ञान किसी युग के किसी एक साहित्यकार का भी कोई ऐसा उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करना मानवीय क्षमता के बाहर है।

(4) **क़ुरआन द्वारा प्रतिपादित नियमों की समरसता** — क़ुरआन मजीद तेईस वर्षों के अन्तराल में अवतरित हुआ। इसके बावजूद उसके द्वारा प्रतिपादित नियमों, परिकल्पनाओं और विविध योजनाओं के बीच ऐसी एकरूपता और अनुकूलता का तारतम्य है जो किसी भी अंश के दूसरे नियम से टकराता नहीं। वे सब एक दूसरे से मिलकर संतुलित जीवन-शैली का गुलदस्ता बना देते हैं। इतने

लम्बे अरसे में कितनी परिस्थितियों का उतार-चढ़ाव आया, फिर भी उन सभी स्थितियों में प्रतिपादित नियमों और सिद्धान्तों में ऐसी अनुकूलता का बरक़रार रखना मानव के वश में नहीं। मानव तो अपने जीवन के भी आदि और अन्त को नहीं जानता। अतः उसके विचारों में बदलाव और टकराव पैदा होता रहता है। सर्वज्ञ ईश्वर ही विविध कालों और परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना ऐसी संतुलित योजना बना सकता है। इसलिए क़ुरआन मजीद ने अपने अन्दर अन्तर्विरोध के अभाव को ईश-ग्रंथ के प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया है।

"क्या ये लोग क़ुरआन में सोच-विचार नहीं करते? अगर यह अल्लाह के सिवा किसी अन्य की ओर से होता तो ये इसमें बहुत-सा अन्तर्विरोध पाते।" —क़ुरआन 4:82

(5) क़ुरआन कोई अनोखा और पहला ईश-ग्रंथ नहीं— क़ुरआन मजीद कोई पहली अवतरित किताब नहीं है कि इसके अवतरण पर आश्चर्य व्यक्त किया जाए। इसके पूर्व अनेकों किताबें अन्य रसूलों (पैग़म्बरों) पर पिछले युगों में अवतरित हो चुकी हैं। पिछली किताबों में क़ुरआन मजीद के अवतरण की शुभ-सूचना दी जा चूकी थी। पिछली किताबों की गवाही के अनुकूल ही क़ुरआन अवतरित हुआ है। क़ुरआन अपनी सच्चाई और ईश-ग्रंथ होने के प्रमाण के रूप में उन पिछली किताबों की गवाही को प्रस्तुत करता है।

"ऐ नबी, उस (अल्लाह) ने तुमपर यह किताब उतारी जो हक़ (सत्य) लेकर आई है और उन किताबों की पुष्टि कर रही है जो पहले से आई हुई थीं। इससे पहले वह मानव के मार्गदर्शन के लिए तौरात और इनजील उतार चुका है।" —क़ुरआन 3:3

"और हमने तुम्हारी ओर यह किताब हक़ के साथ उतारी है, जो उस किताब की पुष्टि करती है जो उसके पहले से मौजूद है और उसकी संरक्षक है। ....." —क़ुरआन 5:48

"निश्चय ही हमने तुम्हारी ओर उसी प्रकार प्रकाशना की है जिस प्रकार नूह और उसके बाद के नबियों की ओर प्रकाशना की। और हमने

इबराहीम, इसहाक़ और याक़ूब और उसकी संतान और ईसा और अय्यूब और यूनुस और हारून और सुलैमान की ओर भी प्रकाशना की। और हमने दाऊद को ज़बूर प्रदान किया।" —क़ुरआन 4:163

पिछली किताबों में से मुख्य रूप से तीन किताबें आज भी दुनिया में मौजूद हैं। वे हैं: (क) 'तौरात' जो पैग़म्बर मूसा (अलै.) पर अवतरित हुई, (ख) 'ज़बूर' जो पैग़म्बर दाऊद (अलै.) पर उतरी और (ग) 'इंजील' जो पैग़म्बर ईसा (अलै.) पर उतरी। ये किताबें 'बाइबल' नामक ग्रंथ के अन्दर संग्रहीत हैं। वे पूर्णतः सुरक्षित नहीं रह सकी हैं, इसके बावजूद उनमें अनेक स्थलों पर क़ुरआन की उस गवाही का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह भी एक प्रबल प्रमाण है क़ुरआन के ईश्वरीय ग्रंथ होने का।

इसी प्रकार पहले के ईश-ग्रंथों का क़ुरआन अनुमोदन करता है। क़ुरआन की इस गवाही से प्राचीन ईश-ग्रंथों की पुष्टि होती है और उनके अन्दर पाई जानेवाली उन शिक्षाओं का मूल्य बढ़ जाता है जिनको क़ुरआन ने ईश्वरीय शिक्षा के रूप में प्रतिष्ठित किया है। पिछले ग्रंथों पर क़ुरआन का यह बहुत बड़ा उपकार है, वरना उन ग्रंथों में परिवर्तन के कारण बहुत-से ऐसे अंश उनमें जुड़ गए हैं जिनसे उनकी वास्तविकता दूषित और संदिग्ध हो गई थी।

अब तीसरे गौण प्रमाण अर्थात् ऐतिहासिक निरन्तरता पर भी थोड़ा विचार कर लें। इतिहास-प्रसिद्ध सारे धर्मों में ईश-ग्रंथ के अस्तित्त्व और ईश-प्रेरणा से प्राप्त शिक्षाओं की धारणा किसी न किसी रूप में पाई जाती है। यह अलग बात है कि समय के दीर्घ अन्तराल ने उन ग्रंथों के असली रूप को परिवर्तित और दूषित कर दिया हो। इस धारणा का निरन्तरता से पाया जाना ही स्वयं में एक विचारणीय तथ्य है । ईश-ग्रंथ होते हैं और हुए हैं, तभी तो इस धारणा का पल्लवन इतना सशक्त रूप में हुआ है। कुछ ईश-ग्रंथों का विलुप्त हो जाना या दूषित हो जाना ईश-ग्रंथ के अस्तित्व के इनकार का कारण नहीं हो सकता।

यह धारणा कि ईश्वर ने मानवता के मार्गदर्शन के लिए ग्रंथ और किताब भेजीं, बुद्धि संगत भी है। तर्क द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है। ईश्वर ने सारी सृष्टि की रचना इस प्रकार की है कि उसके अस्तित्त्व और विकास का पूरा साधन

जुटाया है। हवा, पानी, रौशनी, गर्मी आदि से लेकर खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, चलने-फिरने और मकान बनाने आदि के सारे साधन उसी पालनहार और सृष्टिकर्ता ने उपलब्ध कराए हैं। मानव चेतना-प्रधान जीव है। उसे सिर्फ़ भौतिक साधन ही अस्तित्त्व और विकास के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। विचार और चिन्तन के मार्ग को प्रशस्त करने का साधन भी उसके लिए अनिवार्य है। बुद्धि का तक़ाज़ा है कि प्रभु ने जिस प्रकार हमारी पहली आवश्यकता के साधन जुटाए हैं, उसी प्रकार इस दूसरी आवश्यकता की भी पूर्त्ति करे। बुद्धि की इसी माँग का जवाब है ईश्वरीय मार्गदर्शन और ईश-ग्रंथ।

मनुष्य भौतिक शरीर के साथ ही अभौतिक आत्मा भी रखता है। भौतिक शरीर की आवश्यकता भौतिक साधनों से पूरी होती है। उन साधनों के बिना शरीर की रक्षा और उसका विकास संभव नहीं। उसी प्रकार अभौतिक आत्मा का साधन और आहार अभौतिक तत्त्व ही हो सकता है और ईश्वरीय वाणी का श्रवण और उसका अर्थपान इस आवश्यकता की पूर्त्ति करता है। इसके बिना वह उसी प्रकार निर्बल और रोगी हो जाएगा जैसे भोजन के बिना शरीर।

क़ुरआन मजीद के ईश्वरीय ग्रंथ होने के और भी कई तार्किक प्रमाण हैं। उनमें से एक यह भी है कि क़ुरआन की शिक्षा का अभूतपूर्व प्रभाव मानव-जीवन पर प्रकट हुआ। यदि क़ुरआन मजीद की शिक्षाएँ और उसके द्वारा प्रदर्शित मार्ग के अपनाने और न अपनाने का परिणाम एक जैसा होता और उनमें कोई अन्तर न होता तो उन दलीलों को मानना या उनका इनकार करना अर्थहीन हो जाता। इतिहास गवाह है कि पैग़म्बर के जीवन-काल में अरब की अनपढ़ और उजड्ड गँवार क़ौम ने इस्लाम स्वीकार करके देखते ही देखते इतिहास के धारे को बदल दिया। उनके व्यक्तिगत जीवन और समाज में ऐसा व्यापक सुधार आया कि दुनिया की कोई क़ौम उसके प्रभाव से वंचित न रह सकी। जिन्होंने इस्लाम को जीवन-व्यवस्था के रूप में पूर्णतः स्वीकार किया उनकी तो हालत बदली ही, उनके अतिरिक्त जिन्होंने अपने पुराने विचारों पर क़ायम रहते हुए मात्र सामाजिक सुधार के रूप में इस्लामी व्यवस्था को अंगीकार किया उनकी भी काया पलट गई। सारी ही विचारधाराओं और सामाजिक व धार्मिक व्यवस्थाओं में सुधार आन्दोलन छिड़

गए। मानवाधिकार, न्याय व क़ानून का राज्य स्थापित करने की चर्चा हर ओर होने लगी। यह सब क़ुरआन ही की देन थी।

समय बीतने के साथ विविध कारणों से लोगों के अन्तःकरण में इस्लामी शिक्षा की जड़ कमज़ोर पड़ने या उससे विचलित हो जाने पर उक्त सुधार अपना अर्थ खोता गया। फिर स्थिति बदलने का प्रयास भी किया गया। जब-जब सुधार के द्वारा क़ुरआन की शिक्षा पर आधारित समाज का निर्माण किया गया, वे बहारें फिर से लौट आईं। संसार का कोई वाद या कोई ग्रंथ मानव-जीवन पर ऐसा सशक्त और स्थायी प्रभाव न डाल सका।

सदियाँ बीतने पर और ज्ञान-विज्ञान के विकास के कारण सारे वादों और सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन आ गए। मगर क़ुरआन द्वारा स्थापित मान्यता एवं व्यवस्था में से कोई चीज़ भी बेकार और ग़लत साबित न हो सकी, बल्कि उसकी अर्थवत्ता और अधिक उजागर ही होती गई। क्या न्याय-प्रिय मानव और वस्तुपरक अध्ययन करनेवालों के लिए अब भी संदेह का कोई उचित आधार बाक़ी है?

क्या क़ुरआन सुरक्षित है?

संदेह : *क़ुरआन सदियों पुराना ग्रंथ होने के कारण अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं है, क्योंकि प्राचीन धार्मिक ग्रंथों की सुरक्षा का कोई साधन न था।*

क़ुरआन के ईश्वरीय ग्रंथ सिद्ध होने के बाद सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि क्या डेढ़ हज़ार वर्ष बीतने के बाद भी क़ुरआन अपने मूल रूप में सुरक्षित है? अगर क़ुरआन ईश्वरीय ग्रंथ हो भी तो लम्बे अन्तराल में उसमें फेर-बदल और परिवर्तन हो जाने की संभावना है। ऐसा होने पर उसका लाभ समाप्त हो जाता है और वह ईश-ग्रंथ कहलाने का अधिकार खो देता है।

यह एक स्वाभाविक प्रश्न है। अब से तीन-चार सदियों पूर्व किताबों को सुरक्षित रखने के समुचित साधन उपलब्ध नहीं थे। छापाख़ाना तो था ही नहीं, लेखन-सामग्री का भी बड़ा अभाव था। प्राचीन काल में किताबों की कई प्रतियाँ तैयार करने के लिए लिपिक अपने हाथों से उसे लिखता था। उसमें भूल-चूक होती थी। समय-समय पर उसमें कुछ नए अंश जोड़ दिए जाते थे और कुछ घटा भी दिए जाते थे। कीड़े-मकोड़ों और आग-पानी से सुरक्षित न रहने पर पूरी किताब या उसका कुछ अंश नष्ट हो जाता था। उन क्षतिग्रस्त या विलुप्त ग्रंथों को उस विषय का विद्वान अपनी स्मरण-शक्ति से उसे दुबारा लिखता था। इस प्रकार पुस्तक अपना मौलिक रूप खो देती थी। यही कारण है कि प्रायः सभी प्राचीन पुस्तकों की प्रतियों में पाठान्तर और प्रक्षिप्त अंश पाए जाते हैं।

प्रमाणों के अभाव में अधिकतर लोग मूर्खतापूर्ण श्रद्धा और आस्था के वशीभूत होकर अशुद्ध प्रतियों को भी आँख बन्द करके शुद्ध मान लेते हैं। यदि वह ग्रंथ धार्मिक हो तो श्रद्धा और भक्ति की मोटी तह उसपर लपेट देते हैं। लेकिन

जब उसकी वैज्ञानिक जाँच होती है तो दावे की पुष्टि नहीं हो पाती और वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है। यह विचारणीय तथ्य है कि क्या क़ुरआन मजीद की स्थिति भी ऐसी ही है या उससे भिन्न है। संदेहों के घेरे से निकलकर विश्वास की स्थिति में पहुँचने का मार्ग यही है कि निष्पक्ष भाव से वास्तविकता को परखने का प्रयास किया जाए। इसलिए यह आवश्यक है कि क़ुरआन मजीद की सुरक्षा के साधनों की समीक्षा करके उसके सुरक्षित होने की पुष्टि वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर प्राप्त की जाए। मात्र धार्मिक आस्था पर ही विश्वास न कर लिया जाए।

क़ुरआन मजीद ईश्वर का अंतिम ग्रंथ है। पूरी मानवता के मार्गदर्शन के लिए उसका सुरक्षित रहना अनिवार्य और ईश्वरीय योजना का महत्त्वपूर्ण अंग है । ईश्वर ने इसकी सुरक्षा की गारंटी ली है। इसका स्पष्ट उल्लेख क़ुरआन के अन्दर मौजूद है (क़ुरआन 15:9)। लेकिन ईश्वर ने अलौकिक और अप्राकृतिक साधनों का प्रयोग न करके इसकी सुरक्षा मानव द्वारा इस रीति से करवाई है जो मानव-शक्ति के दायरे में है। उसकी जाँच परख की जा सकती है। यदि अलैकिक रूप से उसकी सुरक्षा की गई होती तो आज हमारे लिए उसकी जाँच-परख करना और विश्वास की स्थिति में पहुँचना संभव न होता।

क़ुरआन की सुरक्षा के लिए दो साधनों का सहारा लिया गया। ये दोनों साधन क़ुरआन के अवतरण काल से अब तक अनवरत रूप से व्यवहार में लाए जाते रहे हैं। पहला है 'हिफ़्ज़ करने' अर्थात् याद कर लेने या कंठस्थ कर लेने का काम और दूसरा है 'लिपिबद्ध' करके ग्रंथ के रूप में सुरक्षित करना।

क़ुरआन मजीद थोड़ा-थोड़ा करके अवतरित हुआ है। यह अवतरण फ़रिश्ते के द्वारा मौखिक रूप से ध्वनि-उच्चारण के साथ होता था। अवतरण के तुरंत बाद पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) उसे याद कर लेते और उसका प्रचार-प्रसार भी करते थे। पैग़म्बर (सल्ल॰) स्वयं लिखना नहीं जानते थे, इसलिए कई लेखन कार्य करनवाले लिपिकों को इसी काम के लिए नियुक्त कर दिया गया था कि वे क़ुरआन के अवतरित अंश को तत्काल लिख लिया करें। क़ुरआन की आयतों के अवतरण के बाद वे लिपिक बुलाए जाते और उन आयतों को लिख लिया जाता। फिर उस लिखित भाग को उनसे पढ़वाकर पैग़म्बर (सल्ल॰) सुन लेते थे, ताकि उसके सही होने

का विश्वास हो जाए। फिर उन आयतों को कई-कई लोग कंठस्थ करके परस्पर एक-दूसरे को सुनाया करते। उसे अन्य लोगों को सुनाकर उसके पैग़ाम का प्रचार-प्रसार किया करते थे। लेखन-सामग्री के रूप में पेड़ के चौड़े पत्तों, ऊँट की चौड़ी हड्डियों और चमड़े की बारीक सूखी झिल्लियों का प्रयोग होता था। फिर उसकी कई-कई प्रतियाँ सावधानी से तैयार करके दूसरे मुसलमानों के पास भी रखवाई जाती, ताकि उसे देखकर अन्य लोग भी पढ़ सकें और याद कर सकें ।

क़ुरआन की तिलावत (पाठ) करने को पुण्य-कार्य के रूप में मान्यता दी गई। साथ ही प्रति दिन की हर नमाज़ में क़ुरआन का कुछ अंश पढ़ना सारे मुसलमानों के लिए अनिवार्य कर दिया गया। साल में एक महीना 'रमज़ान' के अवसर पर पूरे समाज के लोगों को सामूहिक रूप से नमाज़ में पूरे क़ुरआन के सुनने का प्रचलन हुआ। इन सारे कार्यों का निर्धारण पैग़म्बर (सल्ल॰) के जीवन-काल में ही हो गया और सारे मुसलमानों के लिए आदर्श बन गया।

इसी प्रकार क़ुरआन की शिक्षा और उपदेश को सीखने-सिखाने का काम भी ज़ोरों से शुरू किया गया। देखते ही देखते घर-घर में शिक्षा और ज्ञान की ज्योति का संचार हो गया और निरक्षरता तथा अशिक्षा का अंधकार दूर हो गया। साधारण रूप से सारे ही मुसलमान क़ुरआन सीखने-सिखाने के कार्य में भाग लेते, मगर जो उनमें दक्ष होता वह समाज में विशिष्ट स्थान पाता। लोगों की भीड़ उनसे शिक्षा पाने के लिए एकत्र होती। यहाँ तक कि जब अरब पर इस्लाम का पूरा प्रभुत्व छा गया और सत्ता की बागडोर मुसलमानों के हाथ में आ गई तो क़ुरआन ही शासन का आधार ठहरा। क़ुरआन के ज्ञान में जो श्रेष्ठ होता उसे उच्च पद और ओहदे दिए जाते। इस प्रकार क़ुरआन व्यावहारिक जीवन में उन्नति का साधन भी बन गया। धार्मिक आस्था और पुण्य अर्जित करने के अलावा सांसारिक उन्नति का साधन होने के कारण लोगों का ध्यान क़ुरआन की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। उस समय क़ुरआन के सिवा अन्य किसी ग्रंथ का विशेष चलन भी न था, क्योंकि विविध विषध विषयों के ज्ञान से वे लगभग अपरिचित ही थे। साथ ही सरकारी व्यवस्था के तहत क़ुरआन सीखने-सिखाने का विशेष प्रबन्ध था।

उपर्युक्त कारणों से लाखों लोगों द्वारा नस्ल-दर-नस्ल और पीढ़ी-दर-पढ़ी

क़ुरआन के शब्द, उच्चारण और अर्थज्ञान आगे बढ़ता रहा। लाखों लोग ऐसे हमेशा रहे और आज भी हैं जिनको पूरा क़ुरआन क्रम से कण्ठस्थ है । इसके अलावा लिखित प्रतियों का भी इतना विस्तार और प्रचार हुआ कि छापाख़ाना ईजाद होने से पहले भी मुसलमानों का कोई घर क़ुरआन से ख़ाली न था, क्योंकि यह उनकी दैनिक ज़रूरत थी। वे क़ुरआन की लिखित प्रति सामने रखकर प्रतिदिन उसका पाठ करने थे। अब छापाख़ाना हो जाने पर सब किताबों से अधिक छपनेवाली किताब 'क़ुरआन मजीद' ही है।

क़ुरआन के अवतरण काल से अब तक एक दिन के लिए भी कभी ऐसा समय नहीं आया जब क़ुरआन लिखित किताब के रूप में मौजूद न रहा हो या उसका कोई हाफ़िज़ न हो। इसके कंठस्थ करने और लिखने में भी जितनी सावधानी बरती जाती रही, उतनी अन्य किसी किताब के बारे में कभी नहीं बरती गई। इतिहास के उल्लिखित प्रमाणों से क़ुरआन के संरक्षण की सारी विधियाँ और उसकी अक्षुण्णता प्रमाणित होती हैं। यही कारण है कि संसार के किसी भी कोने से प्राप्त क़ुरआन की किसी प्रति में पाठान्तर या कमी-बेशी या किसी वाक्य के आगे और पीछे हो जाने अर्थात् क्रम-भंग की त्रुटि नहीं पाई जाती। लाखों प्रतियों में ऐसी आश्चर्यजनक साम्यता और अक्षुण्णता क़ुरआन के सिवा किसी प्राचीन पुस्तक के अन्दर नहीं पाई गई।

आप क़ुरआन की एक प्रति अरब की लें, एक प्रति ईरान की, एक प्रति हिन्दुस्तान की, एक प्रति इण्डोनेशिया की, एक प्रति चीन की, एक प्रति समरक़न्द व बुख़ारा की, एक प्रति तुर्की की, एक प्रति स्पेन और यूनान की, एक प्रति मिस्र की और एक प्रति अमेरिका के किसी राज्य की । सबको एकत्र करें। फिर उनमें तुलना करके देखें। कहीं एक अक्षर की कमी-बेशी या क्रम में अन्तर न पाएँगे। इतना ही नहीं, इन प्रतियों में आप प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक युग के विभिन्न सदियों के नमूने लेकर देखें। वही साम्य यहाँ भी दृष्टिगोचर होगा। यह दावा मात्र कल्पना के आधार पर नहीं है। मानव के प्रयत्नों ने व्यावहारिक रूप से जाँज-पड़ताल करके इसे सिद्ध किया है।

यूरोप में प्राचीन चीज़ों की खोज और उनके शोध की एक लहर कुछ समय पूर्व

चली थी । वहाँ के विद्वानों ने संसार के सारे प्राचीन प्राप्त ग्रंथों की छान-बीन और जाँच का काम किया। उसी कार्य के अन्तर्गत विद्वानों की एक टीम के द्वारा बर्लिन (जर्मनी) में क़ुरआन पर भी शोधकार्य हुआ। चूँकि क़ुरआन की प्रतियाँ संसार में बहुत पाई जाती थीं, इसलिए ढेर सारी प्रतियों में से बड़े परिश्रम से हर सदी और हर देश के नमूने एकत्र किए गए। विद्वानों की इस टीम ने उन ढेर सारी प्रतियों के नमूनों का सूक्ष्म अध्ययन और पाठों की तुलना का काम किया। चालीस वर्षों तक शोध करने के बाद उसका परिणाम लोगों के सामने आया। जाँच करनेवाली टीम ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया कि क़ुरआन की किसी प्रति में पाठान्तर नहीं है और न ही उनमें कहीं प्रक्षिप्त अंश पाए गए। क़ुरआन की सारी प्रतियों में क्रम की दृष्टि से भी एकरूपता पाई जाती है।

उस अध्ययन टीम में कोई भी मुसलमान नहीं था। फिर भी शायद यह कार्य इतने मनोयोग से इसलिए किया गया कि जैसी त्रुटियाँ और कमियाँ अन्य धार्मिक ग्रंथों में पाई जाती थीं, वैसी ही कमियाँ क़ुरआन के अन्दर ढूँढ़कर वे दुनिया को दिखाना चाहते थे। उद्देश्य चाहे कुछ भी हो, परिणाम ने यह सिद्ध कर दिया कि क़ुरआन मजीद के सुरक्षित होने का दावा मात्र कल्पना और धार्मिक आस्था नहीं बल्कि यह एक ठोस हक़ीक़त है।[1]

कुछ लोगों ने भ्रमवश या द्वेष-भाव से क़ुरआन को असुरक्षित सिद्ध करने का प्रयास भी किया है। इसके लिए उन्होंने जिन तर्कों का सहारा लिया है, यहाँ उनका जायज़ा लेना भी अप्रासंगिक नहीं होगा।

हदीस की किताबों में कुछ रिवायतें (कथन) ऐसी भी हैं जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि क़ुरआन में कुछ फेर-बदल हुआ है। यह धोखा इसलिए भी होता है कि लोग हदीस के ज्ञान की पेचीदा गुत्थियों को समझते नहीं। हदीस में किसी घटना का उल्लेख मात्र से उस घटना की सत्यता सिद्ध नहीं होती। उस के बयान करनेवाले सभी रावियों (उल्लेखकर्त्ताओं) के जीवन और आचरण की छानबीन की जाती है। यदि असत्य आचरणवाला व्यक्ति किसी बुरी भावना से कुछ बातें बनाकर बयान

---

[1] विस्तृत जानकारी के लिए देखें — खुतबात बहावलपुर लेखक-डॉ. हमीदुल्लाह (पेरिस)

करता है तो उसका कथन स्वीकार्य नहीं होता। हदीस के उल्लेखकर्त्ता के जीवन को जाँचने-परखने और किसी भी रिवायत (कथन) को स्वीकर करने के लिए हदीस के सिद्धान्त-ग्रंथों में बहुत-से नियम निर्धारित किए गए हैं। हदीस में इस भ्रम के पनपने के मुख्य रूप से दो कारण हैं – (1) पहला कारण है झूठी हदीस गढ़नेवालों की साज़िशें। क़ुरआन के आरंभिक काल में कुछ लोग जो पहले इस्लाम-विरोधी गुट के थे, डटकर इस्लाम का विरोध करते रहे। इस्लाम की सफलता और प्रभुत्त्व के बाद अब ऐसा करना उनके लिए संभव न रहा। अतः उन्होंने अब विरोध की दूसरी नीति अपनाई। इस्लाम की शिक्षाओं में गड़बड़ पैदा करने की भावना से वे छद्म रूप से इस्लाम स्वीकार करके मुसलिम समाज के अन्दर घुस गए। कम ज्ञानवाले लोगों और नए-नए इस्लाम में आनेवाले लोगों के बीच क़ुरआन और पैग़म्बर के बारे में बड़ी होशियारी से भ्रम फैलाने लगे। उसकी रोकथाम की कोशिश भी हुई। लेकिन वे गौण रूप से क्रियाशील रहे। उनके कथनों को भी हदीस की किताबों में लिख लिया गया। फिर उनकी जाँच-परख की गई। उनके कथनों को ग़लत सिद्ध किया गया। लेकिन कुछ किताबों के लेखकों ने जाँच-परख किए बिना उनके कथनों को अपनी किताबों में दर्ज कर लिया। इस प्रकार कुछ किताबों में ऐसे कथन मिल जाते हैं। (2) दूसरा कारण है, कुछ कथनों के तात्पर्य और सही अर्थ न समझकर उनका दूसरा अवांछित अर्थ समझ लेना। उदाहरणार्थ कुछ रिवायतों में यह उल्लेख मिलता है कि अमुक व्यक्ति के पास क़ुरआन की प्रति में क़ुरआन के अमुक कथन के बाद यह वाक्य विशेष रूप से लिखा हुआ था जो अब किसी प्रति में नहीं मिलता। बाद के कुछ लोगों को उक्त वक्तव्य से यह भ्रम पैदा हो गया कि क़ुरआन में से कुछ अंश निकाल दिए गए। लेकिन विस्तृत जानकारी मिलने पर यह मालूम हुआ कि कुछ शब्दों के अर्थ या उससे सम्बन्धित किसी घटना का उल्लेख वहाँ इसलिए किया गया था कि उस प्रति के पढ़नेवाले को उसका ज्ञान हो जाए। अर्थात् वह अतिरिक्त अंश या वाक्य क़ुरआन की व्याख्या के रूप में था, न कि क़ुरआन के रूप में।

आरंभिक काल के विद्वानों ने क़ुरआन की कुछ आयतों को 'मंसूख़' कहा है – अर्थात् निरस्त (OMIT) आयतें। इससे उनका तात्पर्य यह होता था कि अमुक आयत में वर्णित बात या आदेश जिस परिस्थिति के लिए उतरे थे, अब वह परिस्थिति इस समय नहीं है। अतः वह आदेश यहाँ लागू नहीं होगा। जब कभी फिर वैसी परिस्थिति

होगी तब वह आदेश लागू होगा। लेकिन भ्रमवश बाद के कुछ लोगों ने यह समझ लिया कि क़ुरआन की कुछ आयतें मंसूख़ हो गईं और उन्हें क़ुरआन से निकालकर बाहर कर दिया गया। इसी प्रकार की कुछ अन्य बातें भी हैं जिनका तात्पर्य समझने की ग़लती के कारण कुछ अज्ञानी अनर्थ करते हैं।

क़ुरआन पैग़म्बर (सल्ल॰) के जीवनकाल में ही पूर्णतः लिखित रूप में सुरक्षित कर दिया गया था। फिर बाद में उसकी जितनी प्रतियाँ देश-विदेश में फैलाई गईं उनकी विश्वसनीयता के लिए राजकीय समितियों के संरक्षण में लेखन-कार्य हुआ। लाखों लोगों ने उन प्रतियों को देखा। मगर किसी एक व्यक्ति ने भी यह आपत्ति नहीं की कि क़ुरआन में कोई परिवर्तन किया गया है। फिर उसी विश्वसनीयता के साथ निरन्तर व्यवहार में लाया जाता रहा। क़ुरआन किसी लेखागार में छुपी हुई पुस्तक के रूप में कभी नहीं रहा। लाखों लोगों की गवाहियों और प्रति दिन पठन-पाठन के साथ वह अगली नस्ल तक पहुँचा है। इसके विपरीत एकाध व्यक्ति के कथनों को, जिनमें कोई निरंतरता भी नहीं, कैसे विश्वसनीय माना जा सकता है। अगर उनके कथनों में ज़रा भी सच्चाई होती तो इतिहास में अवश्य इस विषय में मुसलमानों के मतभेद का वर्णन होता। हर युग का इतिहास सुरक्षित है, मगर कहीं किसी युग के मुसलमानों में क़ुरआन के मूल पाठ-सम्बन्धी मतभेद का उल्लेख नहीं। क्या क़ुरआन में किसी परिवर्तन को इतनी आसानी से मुसलमान सहन कर सकते थे कि उसके विरोध में कहीं एक स्वर भी सुनाई न दे? अगर मतभेद होते तो उनके मतभेदों के कारण अवश्य दो प्रकार के क़ुरआन का चलन हो जाता।

क्या क़ुरआन में क्रमिक ज्ञान का अभाव है?

संदेह : *क़ुरआन की आयतों में विषयों का क्रम नहीं, पुनरावृत्तियों की भरमार है और लेखन-कला का अभाव है। ऐसी किताब ईश-ग्रंथ कैसे हो सकती है?*

कोई भी सार्थक और सफल किताब अपने उद्देश्यों और विषय की केन्द्रीयता को लेकर चलती है। अपने उद्देश्यों के अनुकूल भाषा-शैली और भाव-प्रवणता अपनाती है। वह अपने अंतिम परिणाम तक पहुँचने के लिए एक निश्चित मार्ग अपनाती है। इनमें से किसी चीज़ की कमी उस पुस्तक की सफलता में बाधक बनेगी। इस दृष्टि से क़ुरआन पर विचार करने से उसका साहित्यिक सौष्ठव और लक्ष्य-सिद्धि की प्रवीणता और वाग्मिता का कला-कौशल स्पष्ट हो जाता है।

किसी किताब को पढ़ने के लिए उसके विषय और उद्देश्यों को जानना और उसके कला-कौशल का सूक्ष्म अवलोकन आवश्यक है। फिर क़ुरआन कोई साधारण किताब तो है नहीं। इसकी शैली मानव-रचित पुस्तकों से अलग ढंग की है। इसको समझने के लिए थोड़ी मेहनत करनी होगी। एक से अधिक बार पढ़कर उसका ठीक रूप से परिचय पाना होगा।

यदि साहित्य के किसी छात्र को सांख्यिकी की किताब दे दें या इतिहास के छात्र को इंजीनियरिंग या मेडिकल की किताब दे दें तो उसके लिए यह कैसी विचित्र चीज़ होगी, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा इसलिए होता है कि वह उस किताब के आधारभूत सिद्धांत और विषय-वस्तु से पूर्णतः अपरिचित होता है। लेकिन क़ुरआन चूँकि मानव-जीवन के विषयों से ही बहस करता है, इसलिए उतना ज़्यादा अजनबी होने का एहसास नहीं होता। फिर भी धर्म की जो संकुचित कल्पना मनुष्य के दिल में जमी हुई है, उस दृष्टि से आरंभ में कुछ परेशानियाँ स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती हैं। ऐसी बाधाएँ कुछ स्थलों पर ही उत्पन्न होती हैं, जिससे सरलता से निबटा जा सकता है।

क़ुरआन लिखित किताब के रूप में ऊपर से उतारा नहीं गया है। वह छोटे-छोटे भाषण और आह्वान के रूप में उतरा है। फ़रिश्ते की आवाज़ पैग़म्बर (सल्ल.) ने सुनकर फिर उसे लिखवाया है। अवतरित अंश उस समय की घटना और परिस्थितियों से संपृक्त और सम्बद्ध होता था। अतः वह वर्तमान परिस्थिति की बहुत-सारी बातों को गौण रखकर आगे बढ़ता गया है। चूँकि उस समय लोगों के सामने परिस्थिति प्रकट रूप में विद्यमान थी, अतः जिनके सामने बात कही गई थी उन्हें समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। आज बिना परिस्थिति के ज्ञान के हमें समझने में कठिनाई महसूस होती है। दूसरी बात यह है कि क़ुरआन संक्षिप्त रूप में सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है। अगर ऐसा न किया जाता तो ग्रंथ अत्यन्त विशालकाय हो जाता। उसकी सुरक्षा और उसे याद (कंठस्थ) करने में बड़ी कठिनाई होती। इस प्रकार संक्षिप्त रूप में व्यापक बातें कहने की विशिष्ट कला अरबी भाषा की उस समय एक अनुपम विशेषता भी थी।

क़ुरआन की प्रत्येक सूरा एक केन्द्रीय विषय पर आधारित है। किसी पक्ष के विस्तार में जाने के बाद वह फिर लौटकर केन्द्रीय विषय पर आ जाता है। इसके कारण क्रम-भंग होने का एहसास होता है। इसी प्रकार पुनरावृत्ति भी किसी बात पर विशिष्ट रूप से ध्यानाकृष्ट करने के लिए होती है जो सिद्धान्त का अभिन्न अंग है। इस पुनरावृति में भी शब्दों और शैलियों के परिवर्तन से ऐसा सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया जाता है कि वह दोष न होकर गुण की प्रतीति कराता है। लेकिन अनुवाद में ध्वन्यात्मक सरसता और शब्द कौतुक की उस पूरी कला को ढाल देना संभव नहीं। इसलिए अनुवाद के माध्यम से क़ुरआन का अध्ययन करनेवाले इस पुनरावृत्ति में सौन्दर्य के दर्शन नहीं कर पाते।

क़ुरआन लोक-परलोक को परस्पर पूरक और आश्रित तथ्य के रूप में प्रस्तुत करता है। मानव-मस्तिष्क में उत्पन्न होनेवाली जिज्ञासा और भ्रम के निवारण में क़ुरआन के छोटे-छोटे बोल अद्‌भुत चमत्कार दिखाते हैं। मनोविज्ञान की इस गहरी पैठ को न समझनेवाले ऊपर ही ऊपर उदासीन भाव से गुज़र जाते हैं। क़ुरआन का एक-एक वाक्य और पद गहरा चिन्तन चाहता है। वह सरसरी तौर पर अध्ययन करने और विहंगावलोकन करनेवाली किताब नहीं है।

क़ुरआन की अपनी एक विशिष्ट लेखन-कला है। उसमें क्षण-क्षण में विषयों का

बदलाव होता रहता है। कभी आकाश की बात हो रही होती है तो वहीं अचानक बिना पृष्ठभूमि बदले धरती की बात होने लगती है। सांसारिक बातों के बीच से ही परलोक की बात छिड़ जाती है। इसी प्रकार सम्बोधन के पात्रों का परिवर्तन भी अचानक होता है। कभी ईश्वर का सम्बोधन चल रहा होता, उसी बीच में पैग़म्बर की ओर सम्बोधन शुरू हो जाता है। कहीं-कहीं तो यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि यह सम्बोधन किसकी ओर से और किसके लिए है। ऐसा होना भी एक विशिष्ट कला और प्रभाव का प्रदर्शन है। उसकी पहचान होने पर उसके सौन्दर्य का अवलोकन हो सकता है।

क़ुरआन की एक शैली यह भी है कि वह किसी घटना या विवरण का एक पहलू स्पष्ट करता है और इसी से यह निश्चित हो जाता है कि दूसरा पहलू क्या हो सकता है। लेकिन क़ुरआन स्पष्ट शब्दों में उसे खोलता नहीं, बल्कि अपने पाठकों पर विश्वास करके उसे छोड़ देता है कि वह अपनी बुद्धि का उपयोग करके उसे समझ लेगा। उस लुप्त अंश का विवरण न मिलने पर साधारण पाठक को क्रम की विकृति महसूस होती है। इसलिए पाठक को सिर्फ़ किताब पर ही भरोसा करके नहीं बल्कि अपना बौद्धिक कौशल और अर्थ ग्रहण करने की सतर्कता को साथ लेकर चलना पड़ता है।

उदाहरण के लिए दो विपरीत गुणवाले पदार्थों का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करना कि एक के जिस गुण का वर्णन हो दूसरे के उस गुण को छोड़ दिया जाए ताकि विपरीत क्रिया द्वारा पाठक खुद ही समझ ले और दूसरे पदार्थ के उस गुण का वर्णन किया जाए जिसके विपरीत गुण को पहले पदार्थ में छोड़ दिया गया हो। इसके बहुत-से उदाहरण क़ुरआन में मिलते हैं। अच्छे और बुरे गुणवाले लोग, जन्नत और जहन्नम, दिन और रात आदि का विवरण।

यहाँ दिन-रात के एक विवरण को देखिए—

"वही है जिसने तुम्हारे लिए रात बनाई ताकि तुम उसमें चैन पाओ और दिन को प्रकाशमान बनाया..... ।" —क़ुरआन 10:67,27:86

यहाँ रात को आराम पाने के लिए लाभदायक बताया गया है और 'अंधकार' का वर्णन नहीं किया गया है जो रात का गुण है। इसलिए कि उसके विपरीत दिन के

'प्रकाशमान' होने का वर्णन मौजूद है। 'प्रकाशमान' के विपरीत गुण 'अंधकारमय' पाठक अपनी कल्पना से समझ लेगा। रात में 'आराम पाने' का वर्णन मौजूद है तो उसके विपरीत दिन में 'परिश्रम करने और आजीविका के लिए दौड़-भाग का वर्णन छिपा दिया गया ताकि पाठक अपनी मेधाशक्ति से उसकी पूर्त्ति कर ले।

अब यदि पूरी बात खोल दी जाए तो वह इस प्रकार होगी—

"वही है जिसने तुम्हारे लिए रात को (अंधकारमय) बनाया ताकि तुम उसमें चैन-सुकून पाओ और दिन को प्रकाशमान बनाया (ताकि प्रकाश में अपने काम-काज और परिश्रम कर सको)।"

आयत में वर्णित बात पाठक को कुछ अटपटी और अधूरी मालूम पड़ती है। लेकिन काव्यगुण से परिचित व्यक्ति के लिए उसमें जो कौतुक है वह उस सपाट बयान में कहाँ जब सब खोल दिया जाए!

इसी के साथ इस आयत में एक और चमत्कार छिपा हुआ है जो अनुवाद से स्पष्ट नहीं होता। जिस शब्द का अनुवाद 'प्रकाशमान' या 'रौशन' किया गया है वह मूल अरबी में 'मुबसिरा' है जिसका अर्थ होता है 'देखता हुआ' या 'आँखें खोले हुए'। इसका विपरीत अर्थ 'अंधकार' न होकर 'आँखें मूँदे हुए' होगा। तात्पर्य उससे अंधकार और प्रकाश ही है। लेकिन 'देखना' 'आँखें खोलना' या 'आँखें मूँद लेना' आदि प्राणिजगत का व्यापार है। निर्जीव वस्तुओं में इस व्यापार को आरोपित करके उनका मानवीकरण (PERSONIFICATION) कर दिया गया है। इस प्रकार रात और दिन भी हमारे सहचर बन जाते हैं। ऐसे वर्णनों से प्रभावोत्पादकता में वृद्धि हो जाती है।

इस प्रकार के उदाहरण क़ुरआन में भरे पड़े हैं। अतः पाठक जब क़ुरआन का पाठ (तिलावत) करता है तो सारी घटनाएँ चलचित्र की भाँति उसके मस्तिष्क पटल पर गतिशील और जीवित रूप में उपस्थित हो जाती हैं। पाठक उन्हीं के साथ अपने को सहयात्री या हमसफ़र समझने लगता है।

क़ुरआन के छोटे-छोटे बोल मानव के हृदय को इस प्रकार प्रभावित करते हैं कि यदि उसका हृदय चैतन्य हो तो तीर की भाँति सीधे अन्दर पहुँकर उसकी काया पलट देते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं —

ऐ इनसान! किस चीज़ ने तुझे अपने उदार और कृपालु रब के बारे में धोखे में डाल रखा है? जिसने तुझे पैदा किया फिर नख-शिख से तुझे दुरुस्त किया और तुझे संतुलन प्रदान किया। जिस रूप में उसने चाहा तुझे जोड़कर तैयार किया?" —क़ुरआन 82:6-8

"ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह (की पकड़) से डरो और प्रत्येक व्यक्ति यह देखे कि उसने कल (क़ियामत) के लिए क्या भेजा है। अल्लाह से डरते रहो। निश्चय ही अल्लाह तुम्हारे उन सब कर्मों की ख़बर रखता है जो तुम करते हो।" —क़ुरआन 59:18

"क्या ईमान लानेवालों के लिए अभी वह समय नही आया कि उनके दिल अल्लाह की याद से पिघलें और उसके उतारे हुए सत्य के आगे झुकें?" —क़ुरआन 57:16

"क्या उन लोगों ने क़ुरआन पर विचार नहीं किया या उनके दिलों पर ताले लगे हैं? —क़ुरआन 47:24

सारांश यह कि क़ुरआन के काव्य-गुणों और भाषा-शैली की अनभिज्ञता के कारण ही एक साधारण पाठक के सामने कई उलझनें आ खड़ी होती हैं। वरना क़ुरआन में काव्य-सौष्ठव और साहित्यिक सौन्दर्य इतना अधिक है कि अरब के प्रसिद्ध शायरों/कवियों ने क़ुरआन अवतरण के बाद अपनी शायरी छोड़ दी। पूछने पर उन्होंने कारण यही बताया कि अब क़ुरआन के बाद उसके आगे उससे अच्छा मैं क्या कह सकता हूँ!

क़ुरआन की बहुत कम तफ़सीरें (टीकाएँ) ऐसी लिखी गई हैं जिनमें उसके साहित्यिक मर्म को उजागर किया गया हो। अधिकांशतः क़ुरआन के नियम-विधान, उसकी शिक्षाएँ और उनके व्यावहारिक उपयोग का विवरण ही तफ़सीरों का विषय रहा है। यही कारण है कि अधिकांश पाठक साहित्यिक दृष्टि से इसका अध्ययन ही नहीं करते और मुसलमान तो श्रद्धा और ईश-कोप के भय से समझने के मार्ग की किसी कठिनाई का खुलकर इज़हार भी नहीं कर पाते। परिणामतः अधिकांश लोग इस ज्ञान से वंचित ही रहते हैं।

क्या क़ुरआन में अन्तर्विरोध है?

संदेह : *क़ुरआन के कथनों में परस्पर अन्तर्विरोध और विरोधाभास पाया जाता है, जबकि क़ुरआन का दावा है कि उसमें अन्तर्विरोध नहीं है।*

क़ुरआन एक संतुलित और सामंजस्यपूर्ण किताब है। उसके बयानों में कहीं विसंगति नहीं पाई जाती। यह एक ऐसा असाधारण गुण है जो अन्यत्र दुर्लभ है। मुख्य रूप से बहुविध ज्ञान या व्यापक नियम-व्यवस्था की किताबों में वैषम्य अनिवार्यतः पाया जाता है। क़ुरआन विभिन्न परिस्थितियों में थोड़ा-थोड़ा करके 23 साल की अवधि में अबतरित हुआ है। ऐसी स्थिति में तो उसके अन्दर बेशुमार विरोधभास और नियमों की विषमताएँ होनी चाहिएँ। लेकिन क़ुरआन की एक कड़ी दूसरी कड़ी के साथ इस प्रकार संयुक्त है और उसके नियम-क़ानून इस तरह एक-दूसरे के साथ पारस्परिक समन्वय और सामंजस्य का रूप लिए हुए हैं जैसे कि किसी मशीन के सभी कल-पुर्ज़े। क़ुरआन अपने इस विशिष्ट गुण का वर्णन इस प्रकार करता है –

> "क्या ये लोग क़ुरआन में ग़ौर और चिंतन नहीं करते? अगर यह अल्लाह के सिवा किसी और की तरफ़ से होता तो निश्चित रूप से इसमें अन्तर्विरोध पाते।"
>
> –क़ुरआन 4:82

क़ुरआन द्वारा स्थापित मानदण्ड एक स्थायी मानदण्ड है। उसमें कोई अन्तर्विरोध क़ुरआन के बयानों से उत्पन्न नहीं होता। किन्तु विविध घटनाओं और वस्तुओं के विवरण का क्रम कहीं-कहीं बदला हुआ है जो प्रभावोत्पादकता के किसी विशिष्ट उद्देश्य के कारण ही हुआ है। कभी विशिष्ट परिस्थिति के लिए सामान्य नियम से हटकर कुछ आदेश दिए गए हैं। उन्हें विरोधाभास या अन्तर्विरोध नहीं कहा जा सकता। संसार के हर नियम-क़ानून और व्यवस्था में 'अपवाद' का स्थान होता है। भाषा के नियमों में भी अपवाद पाया जाता है। यह लचीलापन और सरलता का

द्योतक होता है। ऐसा नहीं होने पर कठोरता और संकीर्णता का प्रादुर्भाव हो जाएगा। अंतर्विरोध उस समय होता जब उसका एक नियम दूसरे नियम को लागू होने में बाधा डालता। अन्तर्विरोध नहीं होने का तात्पर्य यह है कि उसके उद्देश्यों और मौलिक नियमों तथा आधारभूत मान्यताओं में टकराव और उलट-फेर नहीं होना चाहिए। और ऐसा क़ुरआन के अन्दर कहीं नहीं पाया जाता कि उसका एक नियम दूसरे नियम को निष्क्रिय और अप्रभावी बना दे। एक बात को सत्य के रूप में स्थापित करे और दूसरी जगह उसी को झुठला दे। उदाहरण के लिए दो अन्तर्विरोध दीखनेवाले स्थानों का जायज़ा यहाँ प्रस्तुत है।

क़ुरआन में है –

"उस दिन किसी इनसान और किसी जिन्न से उसके गुनाह पूछने की ज़रूरत नहीं होगी।" –क़ुरआन 55:39

इसके विपरीत कई स्थानों पर क़ुरआन में यह कहा गया है कि–

"तो क़सम है तेरे रब की, हम ज़रूर उन सबसे पूछेंगे कि तुम क्या करते रहे हो।" –क़ुरआन 15:92

और इसी प्रकार –

"और तनिक उनको ठहराओ उनसे कुछ पूछना है।"
–क़ुरआन 37:24

यहाँ पहली आयत में क़ियामत के दिन किसी अपराधी से उसके अपराध के बारे में पूछने का इनकार किया गया है, जबकि दूसरी और तीसरी आयतों में उससे पूछ-ताछ की बात है। इन दोनों में परस्पर विरोध दिखाई देता है।

इसका समाधान यह है कि जहाँ-जहाँ ये आयतें आई हैं, उन आयतों के प्रसंग को मालूम किया जाए और उसके आगे-पीछे की पूरी बात पढ़कर देखा जाए। उन्हें देखने और विचार करने से दो समाधान स्पष्ट होकर सामने आ जाते हैं और प्रकटतः आभासित विरोध समाप्त हो जाता है।

एक समाधान तो यह है कि दो अलग-अलग अवसरों पर यह बात कही गई है। अपराधी से पूछ-ताछ करने के बाद उसके अपराध-कर्मों का रिकार्ड दिखाकर

उसपर स्पष्ट कर दिया जाएगा। फिर जब उसे जहन्नम की ओर ले जाया जाएगा तो वह कुछ अनुनय-विनय करना चाहेंगा तो उस घड़ी उसकी बात पर फिर पूछ-ताछ नहीं होगी। जैसा कि आगे बताया गया है –

"अपराधी अपने चेहरे से ही पहचान लिए जाएँगे। उनके सर के बालों और टाँगों को पकड़कर घसीटा जाएगा।" –क़ुरआन 55:41

उनके चेहरे ख़ुद गवाही दे रहे होंगे कि वे अपराधी हैं और उनके कर्मों का रिकार्ड भी उन्हें अपराधी सिद्ध कर रहा है। फिर अब हीले-बहाने सुनने की ज़रूरत नहीं। उन्हें घसीटकर यातना-गृह अर्थात् नरक में डाला जाएगा।

दूसरा समाधान यह है कि जहाँ पूछने का इनकार है वहाँ यह दर्शाना है कि अल्लाह के व्यापक ज्ञान में उसका अपराध तो सिद्ध है। उसे पूछकर जानने की ज़रूरत नहीं है। जो पूछ-ताछ की जाएगी उसका उद्देश्य अपराधियों पर उनके अपराध को स्पष्ट करना है। दुनिया में तो इस हिसाब के दिन का इनकार करते थे। अब देख लिया न, कैसा है हिसाब का दिन! इस डाँट से अपराधियों को और भी यातना पहुँचेगी। जैसा कि दूसरी आयत के पहले आनेवाली आयत और तीसरी आयत के बाद आनेवाली आयतों से प्रकट है ।

क़ुरआन में एक जगह है –

"कहो, 'क्या तुम उस अल्लाह का इनकार करते हो जिसने (अकेले) दो दिनों में धरती को पैदा कर दिया और तुम उसका समकक्ष और सहयोगी ठहराते हो? वही तो सारे जहान का पालनहार प्रभु है। और उसने धरती के ऊपर पहाड़ जमा दिए और उसमें बरकत रखी और उसमें उसकी ख़ुराकों को ठीक अंदाज़े से रखा सारी आवश्यकताओं की माँग के अनुसार। ये सब काम चार दिन में हो गए। फिर उसने आकाश की ओर ध्यान दिया जो उस समय धुआँ था ..... फिर दो दिनों में सात आकाशों को बनाया .....।" –क़ुरआन 41:9-12

क़ुरआन में अन्यत्र सात जगहों पर (7:54, 10:3, 11:7, 25:59, 32:4, 50:38, 57:4) यह बताया गया है कि धरती, आकाश और उनके बीच जो कुछ है सब की सृष्टि छट दिनों में पूरी हुई। लेकिन उपर्युक्त आयतों में धरती दो दिन में, धरती के

पहाड़ और जीव-जन्तु आदि चार दिनों में, फिर आकाश दो दिनों में पैदा किया। इस प्रकार सारी सृष्टि के निर्माण में आठ दिन लगे । यह बात उन आयतों से मेल नहीं खाती जिनमें छह दिनों में संपूर्ण सृष्टि के पूर्ण हो जाने की बात कही गई है ।

दूसरी बात यह है कि उपर्युक्त आयत में धरती का निर्माण आकाश से पहले बताया गया है जबकि क़ुरआन 79:30 में आकाश के निर्माण के बाद धरती को बिछाने या फैलाने की बात कही गई है। इन दोनों बातों में भी अंतर्विरोध महसूस होता है।

समाधान –

इन दोनों प्रकार की शंकाओं का समाधान इस प्रकार है। उपर्युक्त आयतों में आकाशों और धरती के निर्माण का विस्तृत वर्णन है और उसी विवरण को अन्यत्र सात आयतों में संक्षिप्त रूप से दुहराया गया है। दो दिन में धरती के निर्माण के बाद पहाड़, वनस्पति और जीव-जन्तु आदि के निर्माण में अतिरिक्त दो दिन लगे। इन दोनों का योग चार दिन हुए। यहाँ धरती के निर्माण के बाद धरती के जीव-जन्तु के लिए चार दिन नहीं लगे। यहाँ कुल योग चार दिन है। फिर दो दिन में आकाशों का निर्माण। इस प्रकार चार और दो दिन मिलकर कुल छह दिन हुए।

यहाँ दिन से तात्पर्य एक लम्बा युग है, जैसा कि क़ुरआन ही में यह स्पष्ट किया गया है कि ईश्वर का एक दिन हमारे हिसाब से एक हज़ार साल है। (32:5)

धरती पहले बनी या आकाश इसका स्पष्ट उल्लेख क़ुरआन में नहीं है। दोनों विवरणों के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों एक साथ निर्माण के क्रम से गुज़रे। कुछ कार्य आकाश का और कुछ कार्य धरती का चलता रहा। अतः जब एक के निर्माण की चर्चा चल रही थी तो उसके बाद दूसरे की चर्चा होने का यह अर्थ नहीं कि एक का निर्माण पूर्ण होने के बाद दूसरे का निर्माण आरंभ हुआ।

जब कोई अपना घर बनाता है तो फ़र्श, दीवार और छत में से हर भाग का उतना-उतना काम आगे-पीछे चलता रहता है जितना उस निर्माणक्रम (Process) के लिए आवश्यक होता है। इसी पर इस विवरण का अनुमान किया जा सकता है।

एक दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि आगे-पीछे वर्णन करने का अर्थ दोनों के निर्माण-कार्य की ओर ध्यान दिलाना है, न कि काल की दृष्टि से पहले वर्णित

वस्तु का निर्माण भी पहले होना साबित हो। जैसे एक व्यक्ति ने घर बनवाया। फिर उसने बँगला बनवाया। उसके बाद उसने एक कुआँ खुदवाया। लेकिन एक मित्र को अपने निर्माण-कार्य का परिचय देते हुए वह यह कहे कि देखिए मित्र, मैंने यह कुआँ खुदवाया। फिर यह बँगला भी मैंने अपनी सामर्थ्य से ही बनवाया। फिर इतना बड़ा घर जो सामने देख रहे हैं उसे भी मैंने अपनी ही कमाई से बनवाया है। किसी दूसरे का इसमें कोई सहयोग नहीं है।

इस विवरण से उसका उद्देश्य सिर्फ़ यह कि अपने बड़े-बड़े कामों को एक-एक करके वह सामने लाए। यहाँ यह उद्देश्य नहीं है कि किस काम को उसने पहले किया। 'फिर मैंने घर बनवाया' से आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं निकलता कि उसने पहले वर्णित वस्तुओं को बनवाने के बाद घर बनवाया। यहाँ 'फिर' से उसका तात्पर्य है 'फिर यह भी'। इसी प्रकार जहाँ क़ुरआन ने धरती के बाद आकाश बनाने का वर्णन किया है, वहाँ उसका तात्पर्य है जिस प्रकार धरती का निर्माण अल्लाह ने अपनी सामर्थ्य से अकेले किया है, उसी प्रकार आकाश को भी उसी ने बनाया है।

एक अन्य मत यह भी है कि 'आकाश के निर्माण के बाद धरती के बिछाने के वर्णन (क़ुरआन 79:30) से यह सिद्ध नहीं होता कि यहाँ धरती के निर्माण का वर्णन हो । धरती बहुत पहले बनी। फिर हज़ारों साल में उसकी सतह पर पहाड़, समुद्र और समतल बने। अर्थात धरती के बिछाए जाने का तात्पर्य उसकी सतह को समतल करने और जीव के लिए उपयोगी होने से है। इसलिए उसका निर्माण बाद में नहीं मानना चाहिए।

उपर्युक्त समाधान के सभी विवरणों में से कोई भी असंभव नहीं है। अतः आयतों में विरोध मानना आवश्यक नहीं होगा ।

क्या क़ुरआन की शिक्षाओं में असहिष्णुता और क्रूरता है?

संदेह : *क़ुरआन मजीद में कठोरता और क्रूरता की शिक्षा मिलती है। विरोधियों के प्रति कोई सहनशीलता और सहानुभूति या उदारता की शिक्षा नहीं है।*

दुनिया की किसी भी किताब या किसी भी व्यक्ति के बयान को अगर उसके संदर्भ और प्रसंग से काट दिया जाए और कोई नया संदर्भ और प्रसंग अपनी ओर से बनाकर उसमें उस बयान को रखकर अध्ययन किया जाए तो कभी उसका सही अर्थ नहीं समझा जा सकता है। हर कथन पर मनमाना आक्षेप आरोपित किया जा सकता है। क़ुरआन के विरोधियों ने आरंभिक काल से ही ऐसा दुर्व्यवहार करके अपने ओछेपन का प्रदर्शन किया है। यद क्रम आज तक जारी है और शायद भविष्य में भी ऐसा होता रहेगा। इसके निराकरण का सर्वोत्तम उपाय यह है कि इस आरोप की वास्तविकता जांनने के लिए पूरे क़ुरआन का एक बार अध्ययन किया जाए। क़ुरआन के अन्दर उदारता और कठोरता के सारे संदर्भों का निरीक्षण किया जाए। वास्तविकता बिलकुल साफ़ और स्पष्ट हो जाएगी ।

क़ुरआन अल्लाह की किताब है। उसका उद्देश्य पूरी मानव-जाति का मार्गदर्शन और कल्याण है। पूरी मानव-जाति ईश्वर के परिवार के समान है। उसकी सृष्टि होने के कारण उसे मानव से प्रेम और सहानुभूति है। उसने विश्व की सभी सृष्टियों को न्याय पर टिकाया और आधारित किया है। वही स्वयं अन्याय का वाहक कैसे हो सकता है?

हम स्वयं इस बात पर विचार करें कि न्याय और अन्याय की धारणा का हमारे पास क्या मानदण्ड है। मानव चूँकि विचार और व्यवहार की स्वतत्रंता रखता है, इसलिए अच्छे और बुरे मार्गों में से किसी एक को वह अपनी इच्छा से स्वीकार करता

है। इस प्रकार हर युग में अपने व्यवहारों की दृष्टि से कुछ लोग दुष्ट होते हैं तो कुछ सज्जन। क्या कभी मानव-समुदाय ने उन दोनों प्रकार के मनुष्यों को समान दर्जा दिया है? दोनों को समान दर्जा देना अन्याय है। दुष्टों को उनकी दुष्टता से रोकना और उन्हें कल्याण का मार्ग दिखाना मानव का कर्त्तव्य है। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता को न छोड़े तो उसके दुष्प्रभाव से समाज को बचाने के लिए उसे सज़ा देने का प्रावधान हमेशा रहा है। अदालत और जेलख़ाने का अस्तित्त्व तो है ही इसी लिए कि वह समाज में न्याय और शांति स्थापित करे।

क़ुरआन ने दुष्टों को उनकी दुष्टता त्यागने और सज्जनता अपनाने के लिए शिक्षा-दीक्षा, विचार-विमर्श, सुधार के लिए सुदीर्घ अवसर, क्षमादान आदि की व्यापक व्यवस्था का प्रावधान किया है। फिर भी वैयक्तिक और वैचारिक क्षेत्र में अगर वे नहीं मानते तो 'तुम्हारी राह अलग और हमारी राह अलग' की नीति अपनाकर वह यह शिक्षा देता है कि तुम्हारे कर्त्तव्यों के परिणाम खुद तुम्हें बता देंगे कि वे तुम्हारे लिए कितने लाभप्रद हैं या कष्टदायक। फ़ैसला दुनिया ही में चुका देने के बजाय मुहलत दी गई है कि वे अपना कर्त्तव्य पूरा कर लें। न्याय का एक दिन निश्चित है। वहाँ उनके द्वारा किए गए कर्मों का भरपूर बदला मिलेगा। इस प्रकार हर मामले को दुनिया ही में निपटाने की उग्रता की शिक्षा क़ुरआन नहीं देता। ये सारी शिक्षाएँ सहनशीलता का ही द्योतक हैं।

दूसरी तरफ़ क़ुरआन इस बात की भी शिक्षा देता है कि यदि कोई व्यक्ति या समूह पूर्ण रूप से दुष्टता का परित्याग न करे तो जो कुछ थोड़ी-सी सज्जनता उसके पास है, कम-से-कम उतनी सज्जनता में उसके साथ सहयोग किया जाए। इसको उदारता और सहानुभूति नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?

क़ुरआन ने दुनिया के सारे इनसानों को समान माना है । वह रंग, नस्ल, भाषा, क्षेत्र आदि विविधताओं को मानव के बीच एकता व सहिष्णुता का बाधक तत्त्व नहीं मानता। उन्हें परिस्थिति का स्वाभाविक गुण बताकर उन सबसे ऊपर उठाकर एक माँ-बाप की संतान के रूप में उसने परिचित कराया और परस्पर भाई बनाकर जोड़ दिया। किसी भी व्यक्ति से कोई दुराव और छुआछूत तथा घृणा की भावना को क़ुरआन अपराध ठहराता है। ईश्वर के निकट श्रेष्ठ सिर्फ़ वही है जिनमें

सत्य-निष्ठा और ईशपरायणता हो, जो नेकी करे और बुराई से बचे, जो दूसरों के हित के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करे। अच्छे कामों में जो सबका सहयोग करे और लोगों को मजबूर और विवश न करे बल्कि उन्हें विवशता से निकाले।

क़ुरआन का आदेश सबके लिए व्यापक है, उसमें कोई संकीर्णता और पक्षपात नहीं। इसके कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं –

"भलाई और परहेज़गारी के कामों में तुम एक-दूसरे का सहयोग करो और बुराई तथा अत्याचार के कामों में परस्पर सहयोग न करो।"
–क़ुरआन 5:2

"ऐ पैग़म्बर! आप किताब रखनेवालों से कह दीजिए कि तुम सब आओ एक ऐसी बात की ओर जिसमें हमारे और तुम्हारे बीच सामान्य सहमति है, वह यह कि एक अल्लाह के सिवा हम किसी की बंदगी न करें।" –क़ुरआन 3:64

"दीन (धर्म) के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है। सत्य को असत्य से छाँटकर अलग कर दिया गया है।" –क़ुरआन 2:256

"हमने उसे (मानव को) मार्ग दिखा दिया। अब चाहे वह (मार्ग का अनुसरण करके) कृतज्ञ बने या अवज्ञाकारी।" –क़ुरआन 76:3

"यह तो एक नसीहत और याददिहानी है। अब जिसका दिल चाहे इससे नसीहत हासिल करे।" –क़ुरआन 74:54-55

"स्पष्ट कह दो कि यह सत्य है तुम्हारे रब की ओर से, अब जिसका जी चाहे मान ले और जिसका जी चाहे इनकार कर दे।" –क़ुरआन 18:29

"जो कोई नेक काम करेगा अपने ही लिए करेगा अर्थात उसमें उसी की भलाई है और जो बुराई करेगा वह स्वयं ही उसका फल पाएगा । फिर जाना तो सबको अपने रब ही की ओर है।" –क़ुरआन 45:15

"अगर तेरे रब का इरादा यह होता (कि धरती पर सारे लोग ईमानदार और आज्ञाकारी ही हों) तो सारे धरतीवासी ज़रूर ईमान ले आए होते।

फिर क्या तू लोगों को मजबूर करेगा कि वे ईमानवाले हो जाएँ?"

—क़ुरआन 10:99

नोटः जब ईश्वर ने लोगों को विवश नहीं किया है तो तुम कौन होते हो विवश करनेवाले? स्वेच्छा से जो ईमान लाए वही ईमान लाभप्रद है। वैचारिक स्वतंत्रता ही तो परीक्षा है। विवशता में परीक्षा समाप्त हो जाएगी। फिर दण्ड या पुरस्कार निरर्थक हो जाएगा।

क़ुरआन में ईश्वर ने युद्ध के जो आदेश दिए हैं वे किसी वैचारिक मतभेद या साम्प्रदायिक द्वेष के कारण नहीं। बल्कि धरती पर फैले अत्याचार और फ़साद को मिटाकर दबे-कुचले लोगों को स्वंतत्र कराने और आततायियों को उनकी दुष्टता से रोकने के लिए ही है। क़ुरआन में है —

"आख़िर क्या कारण है कि तुम अल्लाह की राह में उन बेबस मर्दों, औरतों और बच्चों के लिए न लड़ो जो कमज़ोर पाकर दबा लिए गए हैं और फ़रियाद कर रहे हैं कि ऐ हमारे रब! हमें इस बस्ती से निकाल जिसके निवासी ज़ालिम हैं, और अपनी ओर से हमारा कोई संरक्षक और सहायक बना दे।"

—क़ुरआन 4:75

"और तुम अल्लाह की राह में उन लोगों से लड़ो जो तुमसे लड़ते हैं, मगर ज़्यादती न करो कि अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता।"

—क़ुरआन 2:190

"क्या तुम न लड़ोगे ऐसे लोगों से जो अपने वादे और प्रतिज्ञा तोड़ रहे हैं, और जिन्होंने रसूल को देश से निकाल भगाने का इरादा किया था, और उन्होंने ही आगे बढ़कर तुमसे छेड़छाड़ की? क्या तुम उनसे डरते हो? अगर तुम ईमानवाले हो तो अल्लाह ज़्यादा इसका हक़दार है कि तुम उससे डरो।"

—क़ुरआन 9:13

क़ुरआन द्वारा प्रस्तावित ये युद्ध जिस उद्देश्य के लिए लड़े गए वे बड़े महान उद्देश्य थे। मानवता के हित साधन के लिए और धरती से बिगाड़ दूर करने के लिए थे। अतः ये अभिशाप नहीं बल्कि मानव-कल्याण हेतु वरदान स्वरूप थे । इसी लिए

ईश्वर ने उनको दुनियावालों पर अपनी कृपा और फ़ज़्ल क़रार दिया।

"अगर इस तरह अल्लाह इनसानों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के द्वारा हटाता न रहता तो धरती पर फ़साद और उपद्रव फैल जाता। लेकिन दुनिया के लोगों पर अल्लाह की बड़ी कृपा व अनुकम्पा है (कि इस प्रकार वह फ़साद को दूर करने की व्यवस्था करता रहता है)।"

—क़ुरआन 2:251

क़ुरआन का यह आदेश भी है कि विरोधी मत रखनेवाले लोग भी यदि शांति भंग न करें और अत्याचार करने में मानवीय सीमा का उल्लंघन न करें तो उनके साथ सौहार्द्र और भलाई का सुलूक किया जाए। निरपराध लोगों पर कोई ज़्यादती न की जाए। मानवता के गौरव-गरिमा की रक्षा की जाए ।

"अल्लाह तुम्हें इस बात से नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ नेकी और इनसाफ़ का बरताव करो जिन्होंने दीन (धर्म) के मामले में तुमसे युद्ध नहीं किया है और तुम्हें तुम्हारे घरों से नहीं निकाला है। निस्संदेह अल्लाह इनसाफ़ करनेवालों को पसन्द करता है।" —क़ुरआन 60:8

इस प्रकार क़ुरआन की शिक्षाओं में सहनशीलता व उदारता की भरपूर पुष्टि की गई है। इसका इनकार करना दिन के उजाले को झुठलाने जैसा है। उदारता में क़ुरआन आधुनिक युग के सारे सिद्धान्तों से बहुत आगे है। जब तक दुष्टों और विरोधियों का अत्याचार अपनी सीमा से आगे बढ़कर सत्य के मार्ग का रोड़ा न बने और उनकी शत्रुता जान-माल की तबाही और घर से बेघर करने की सीमा तक न आ जाए, लड़ने का आदेश नहीं दिया गया है। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए तो संसार के सारे विधानों में उसके विरुद्ध लड़ने और आततायियों को कुचल डालने का आदेश दिया गया है। लेकिन क़ुरआन ने यहाँ पर भी फ़ितना और उपद्रव की समाप्ति तक ही इसका आदेश दिया है। उपद्रव की समाप्ति के बाद आबादियों को बदले की भावना से तबाह करने का वह आदेश नहीं देता, जबकि जो लोग क़ुरआन का विरोध करते हैं उनके यहाँ इस प्रकार की किसी सीमा का पालन नहीं होता। शत्रुता की आग जब भड़क जाए तो उनके यहाँ न्याय-अन्याय की कोई सीमा नहीं रहती।

क़ुरआन मानव को हर हाल में न्याय का पक्षधर बने रहने की शिक्षा देता है। वह सर्वज्ञ ईश्वर के प्रकोप से लोगों को डराता है ताकि न्याय की सीमा का उल्लंघन न हो सके।

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह के लिए सच्चाई पर क़ायम रहनेवाले और इनसाफ़ की गवाही देनेवाले बनो। किसी गरोह (समुदाय) की दुश्मनी तुमको इतना उत्तेजित न कर दे कि इनसाफ़ से हट जाओ। इनसाफ़ करो, यह सदाशयता के बहुत अनुकूल है। अल्लाह से डरकर उसके आदेश का पालन करो। निश्चय ही अल्लाह तुम्हारे कर्मों की ख़बर रखता है।"
>
> —क़ुरआन 5:8

क्या क़ुरआन का दण्ड-विधान क्रूरतापूर्ण है?

संदेह : *क़ुरआन मजीद में प्रस्तावित दण्ड-विधान अत्यन्त क्रूरतापूर्ण और जंगली युग के क़ानून जैसे हैं। मानव-समाज के विकास के साथ क़ानून में परिवर्तन और सुधार आया है। ऐसे में आज भी क़ुरआन के उन क़ानूनों को लागू करना कितना उचित होगा?*

क़ुरआन मानव-समाज के हित का मार्ग प्रशस्त करता है। उसके द्वारा दिए गए दण्ड-विधान में भी मानव-प्रकृति और समाज-कल्याण का पूरा ध्यान रखा गया है। क़ुरआन प्रधानतया समाज का सुधार मानव के विचारों में परिवर्तन लाकर एक सभ्य समाज की स्थापना द्वारा करता है । समाज में अपराध को जन्म देनेवाले और उसके पोषक तत्व जितने होते हैं उनका रास्ता बन्द करता है। अपराध के उत्प्रेरक घटकों और उसके मौलिक कारणों को वह पहले ही प्रतिबंधित कर देता है। इस कारण बुराई का हौसला बढ़ानेवाले कारक पनप नहीं पाते, साथ ही ऐसी व्यवस्था की जाती है कि मानव के सामने अभाव और विवशता भी ऐसी न आने पाए कि अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के अभाव में मजबूर होकर वह अपराध की ओर प्रवृत्त हो। दण्ड देना उसका मुख्य ध्येय नहीं है। फिर जब आवश्यक हो जाता है कि किसी पर सज़ा जारी की जाए तो उसमें भी वह इतनी शर्तें और व्यवधान क़ानून के मार्ग में उपस्थित कर देता है कि सज़ा लागू करना बहुत आसान नहीं होता। ऐसा इसलिए है कि किसी निरपराध को धोखे में या झूठे आरोप में सज़ा न भुगतनी पड़े। दूसरे यह कि अपराधी को तौबा करके सुधरने का मौक़ा मिल जाए। लेकिन बचाव के इतने उपायों के बाद भी यदि कोई अपराधी हौसला दिखाता है तो अपराध सिद्ध हो जाने पर उसे ऐसी सज़ा देता है कि समाज के दूसरे किसी व्यक्ति को आगे ऐसा अपराध करने का साहस न हो सके। इसे कुछ उदाहरणों से समझा जा सकता है —

उदाहरण (1) : क़ुरआन ने चोरी करनेवाले मर्द या औरत की सज़ा उसकी कलाई के पास से हाथ काट देना निश्चित किया है, (क़ुरआन 5:38)। लेकिन इस सज़ा को लागू करने के लिए कई शर्तें रखी गई हैं। खाने-पीने या सड़ने-गलनेवाली मामूली वस्तु की चोरी पर यह सज़ा नहीं दी जाएगी। भूख से पीड़ित होने पर जीवन-रक्षा के लिए चोरी करनेवाले को यह सज़ा नहीं दी जाएगी। हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपने शासनकाल में दुर्भिक्ष (अकाल) के प्रादुर्भाव होने पर चोरी की सज़ा लागू न करने का एलान कर दिया था । समाज के लोगों को रोज़गार देने, सरकारी तौर पर वज़ीफ़े देने, कारोबार के साधन उपलब्ध कराने आदि की ज़िम्मेदारी सरकार पर होती है ताकि समाज में हर व्यक्ति आर्थिक रूप से ख़ुशहाल ज़िन्दगी बिता सके।

हर छोटी चीज़ की चोरी के लिए यह सज़ा नहीं है। उसके लिए कोई मामूली सज़ा हो सकती है। एक निश्चित धन-राशि (10 दिरहम चाँदी का मूल्य) नियत कर दी गई है कि यदि कोई व्यक्ति उतनी या उससे अधिक धन-राशि की चोरी करे तब उसका हाथ काटा जाएगा।

इसी प्रकार यदि सरकारी ख़ज़ाने से कोई चोरी करता है तो उसका हाथ न काटा जाएगा। सरकारी सम्पत्ति में समाज के प्रत्येक व्यक्ति का हक़ कुछ अंश में रहता है, इसलिए चुराए गए उस माल में उस चोर का हिस्सा भी सम्मिलित था । अतः उसके अपराध के अनुकूल दूसरी कोई सज़ा दी जाएगी, हाथ न काटा जाएगा।

इसी प्रकार असुरक्षित स्थान से चोरी करनेवाले को भी हाथ काटने की सज़ा न दी जाएगी, क्योंकि धन के मालिक को अपने धन की सुरक्षा का उपयुक्त प्रबन्ध करना चाहिए था। धन के मालिक ने धन को असुरक्षित रखकर चोर के लिए चोरी का अवसर प्रदान कर दिया है। अतः चोर के अपराध की गंभीरता कम हो जाती है।

चोर के अपराध को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य और प्रमाणों का सुनिश्चित करना भी अदालत पर अनिवार्य है। इन सारे बन्धनों के साथ सज़ा इतनी कठोर इसलिए रखी गई है कि समाज में शांति हो और लोगों को ख़तरों और भय से मुक्ति मिल सके। इस सज़ा को अनुचित कहना चोरों और अपराधियों के साथ अनुचित सहानुभूति और दमदर्दी है। इससे समाज में गुण्डागर्दी को बढ़ावा मिलता है।

इस सज़ा के क़ानून को ऐसा भयावह बनाकर पेश किया जाता है कि बस एक पिन भी किसी ने चोरी की और सज़ा के लिए जल्लाद तलवार खींचे और कोड़ा लिए इन्तिज़ार में खड़ा है। उसके किसी उज्र का ख़याल किए बिना उसका हाथ काटकर उसे अपंग बना दिया जाता है और कुछ वर्षों तक यह सज़ा अगर लागू रही तो देश के सारे नागरिक लूले और अपंग हो जाएँगे। उपर्युक्त विवरण के साथ क्या इस काल्पनिक चित्र का कोई सामंजस्य हो सकता है?

उदाहरण (2) : क़ुरआन की दूसरी बड़ी सज़ा व्यभिचार (अनैतिक संभोग) की सज़ा है। आधुनिक युग में भौतिक विकास के साथ-साथ नैतिक पतन भी चरम सीमा को पहुँच गया है। आज के युग में खुले-छिपे आशनाइयाँ करना और पारस्परिक सवेच्छा से व्यभिचार करना तथाकथित बाबू साहिबों और शरीफ़ लोगों का लगता है जन्मसिद्ध अधिकार हो गया है । मनोरंजन के साधनों के साथ इस बुराई को जीवन का आवश्यक अंग बना लिया गया है। इसलिए उनको क़ुरआन की यह सज़ा सबसे ज़्यादा खटकती है।

व्यभिचार आज हमारे समाज का कैंसर बन गया है। क़ुरआन इसका इलाज किस प्रकार करता है तथा वह कितना हितकर है इसपर विचार करना ज़रूरी है। इससे आक्षेपों की वास्तविकता भी खुलकर सामने आ जाएगी।

क़ुरआन ने व्यभिचार की सज़ा खुले आम चौराहे पर सौ कोड़े लगाना निश्चित किया है, (क़ुरआन 24:2)। यदि पुरुष और स्त्री दोनों सहमति से यह दुष्कर्म करे तो दोनों को समान सज़ा दी जाएगी। लेकिन यदि एक पक्ष बलपूर्वक दूसरे पक्ष को विवश करके उसकी इच्छा के विरुद्ध यह घृणित कर्म करता है तो सिर्फ़ बल प्रयोग करनेवाला पक्ष ही सजा का अधिकारी होगा।

यदि कोई व्यक्ति सज़ा पाने के बाद या सज़ा पाने से पूर्व पकड़ में न आने के कारण बार-बार ऐसा अपराध करता है जिससे समाज में उपद्रव की स्थिति गंभीर हो जाती है तो उसकी सज़ा यह है कि जन-समूह की उपस्थिति में गड्ढा खोदकर अपराधी को कमर तक धरती में गाड़ दिया जाएगा और जन-समूह की भीड़ चारों ओर से उसपर पथराव करेगी। इतने पत्थर मारे जाएँगे कि वह वहीं मर जाए । फिर उसकी लाश वहाँ से उठाकर उसकी अंतिम क्रिया सामान्य नियम के अनुसार की जाएगी।

सज़ा बन्द कमरे में न देकर लोगों की उपस्थिति में इसलिए दी जाती है कि दूसरे लोगों को इससे सबक़ मिले। इस प्रकार के दूसरे अपराधी या अन्य कोई व्यक्ति आगे ऐसा दुष्कर्म करने का साहस न कर सके।

यह सज़ा वास्तव में बहुत कठोर है। लेकिन इतनी कठोर सज़ा इसलिए निश्चित की गई है कि यह अपराध समाज के लिए बहुत ही दूरगामी प्रभाव रखता है। सामाजिक प्रतिष्ठा के हनन से जीवन भर व्यक्ति अपने को कलंकित समझता है। साथ ही अवैध संतान के लिए संपत्ति का अधिकार और सामाजिक रिश्तों का अधिकार बहुत व्यापक समस्या उत्पन्न कर देता है। यह अपराध सभ्य समाज के ख़िलाफ़ एक बग़ावत और विद्रोह है। नैतिकता के आधार को खोखला करनेवाला है। जिस समाज का आधार नैतिक मूल्यों पर हो वह भला कैसे इसको सहन कर सकता है!

क़ुरआन समाज की ऐसी व्यवस्था करता है कि किसी को अपराध करने का अवसर ही न मिले। सिर्फ़ सज़ा ही को अपराध रोकने का साधन नहीं बनाया गया है। क़ुरआन ने अपराध रोकने की जो नैतिक और सामाजिक व्यवस्था की है यदि किसी समाज में वह व्यवस्था लागू न हो तो वैसी स्थिति में यह सज़ा भी लागू नहीं की जाएगी। क़ुरआन ने पहले अपराध के दरवाज़ों को मज़बूती से बन्द किया है ताकि किसी के लिए अपराध करना आसान न रहे। फिर भी कोई कठिन परिश्रम करके सुरक्षा की दीवार तोड़कर अपराध ही करना चाहे तो उसे ऐसी भयानक सज़ा भुगतने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

व्यभिचार के रोग से समाज को मुक्त रखने के लिए हर जवान औरत और मर्द को शादी करने की प्रेरणा दी गई है । अगर कोई साधन के अभाव के कारण शादी करने में अक्षम है तो उसे सक्षम बनाने और शादी करवाने की ज़िम्मेदारी समाज और सरकार पर डाली गई है (क़ुरआन 24:32)।

विधवा और तलाक़ पाई हुई औरत और पत्नी रहित मर्द के लिए अनिवार्य है कि वह जल्द से जल्द शादी की व्यवस्था कर ले। कुछ परिस्थितियों में एक से अधिक शादी करने का भी अधिकार है ताकि व्यभिचार की ओर अग्रसर होने का कोई मौक़ा न रहे। क़ुरआन की दृष्टि में ब्रह्मचर्य धारण करना एक अपराध है क्योंकि ऐसा

करके मनुष्य अपनी आत्मा और शरीर को कष्ट देता है। चोर दरवाज़े से अपनी आवश्यकता की पूर्त्ति करता है। दुश्चरित्रता का घातक बीज समाज में बोता है। अपनी प्रकृति के विरुद्ध वह संघर्ष करता है और अंत में परास्त हो जाता है।

समाज में औरत को परदा करने का आदेश देकर क़ुरआन ने व्यभिचार के मुख्य द्वार पर पहरा बिठा दिया है। रूप-दर्शन ही वह पहला क़दम है जो व्यभिचार की परिणति तक पहुँचाने का कारण बनता है।

क़ानून का दुरुपयोग न हो इसलिए सज़ा सुनाने के लिए यह शर्त निश्चित की गई है कि सम्भोग की क्रिया करते हुए प्रत्यक्ष देखनेवाले चार गवाह मौजूद हों (क़ुरआन 24:4,13)। गवाह विश्वसनीय व्यक्ति हो जो शपथ लेकर इस बात की गवाही दे कि उसने अपनी आँख से अमुक व्यक्ति को अमुक स्थान पर यह कर्म करते देखा है। फिर गवाहों के बयान और उन परिस्थितियों की जाँच होगी जिनमें गवाह ने उक्त घटना को देखा है। जब पूरी छानबीन के बाद अपराध सिद्ध हो जाए तब सज़ा सुनाई जाएगी। इससे अनुमान किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति पर अपराध सिद्ध करके यह सज़ा दिला देना कितना कठिन है। वह कैसा उद्दंड और कलुषित व्यक्ति होगा जो शादी का आसान वैध तरीक़ा न अपनाकर ऐसी उद्दण्डता करे और वह भी इस प्रकार कि चार प्रत्यक्षदर्शी इसके गवाह बन सकें!

अतः व्यभिचार की सज़ा वर्षों बाद कभी एक-आध ही सामने आती है। लेकिन दुष्प्रचार करनेवाले इसे इस तरह बयान करते हैं जैसे कि प्रतिदिन सज़ा पानेवालों का ताँता लगा रहता हो। एक तो जाइज़ तरीक़े से आवश्यकता पूर्ति के सुलभ मार्ग खुले रहने के कारण और जीवन के हर क्षेत्र में नैतिकता की मज़बूत पकड़ के कारण साधारणतया कोई बुरे मार्ग पर जाना ही नहीं चाहता। कुछ दुष्ट अगर बुराई की ओर प्रवृत्त हों तो क़ानून की शर्तें पूरी न होने के कारण अपराधी होते हुए भी बच सकते हैं, क्योंकि यह सज़ा अंधाधुंध नहीं दी जाती। फिर उन दुष्टों का 99 प्रतिशत भाग भी सज़ा के डर से अपना आचरण सुधारने पर विवश होता है। इस प्रकार पूरा समाज इस बुराई से और इस सज़ा से भी लगभग मुक्त हो जाता है।

क़ानूनी पकड़ से बाहर छुपकर बुराई करनेवालों को यह सज़ा न मिलने का यह अर्थ नहीं है कि उन्हें खुली छूट मिल जाती है।उन्हें यह कठोर सज़ा तो न दी जाएगी

लेकिन सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नियमों का उल्लंघन करने और लोगों के संदेह के दायरे में आने पर उन्हें चेतावनी दी जाएगी, प्रताड़ित किया जाएगा। आवश्यकता पड़ने पर कोई दूसरी मामूली सज़ा भी दी जा सकती है ताकि वे संदिग्ध आचरण से भी दूर रहें। सामाजिक रूप से यह क्रिया चलती रहेगी यहाँ तक कि सुधार या सजा में से किसी एक को वरण करने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ेगा ।

इस अपराध की सज़ा में ढील देकर आधुनिकता के मतवाले नक़्क़ालों ने मानवता के प्रति कोई उपकार नहीं किया है। एक अपराधी के प्रति हमदर्दी ने कितनी माँ-बहनों की इज़्ज़त और जीवन से खिलवाड़ किया है वह आज किसी से छुपा हुआ नहीं है। एक ओर क़ानून द्वारा तो परस्पर सहमति से व्यभिचार करने को अपराध की सीमा से ही ख़ारिज कर दिया गया है। यही अपराध सहमति से करें तो वैध हो जाता है और बलात्कार हो तो अपराध माना जाता है। व्यभिचार के लिए प्रवृत्त और उत्तेजित करनेवाले साधनों को फैलाने की खुली छूट मिली हुई है। मनोरंजन के नाम पर नंगा नाच, सिनेमा, टी.वी., फ़ैशन के विपुल साधन, सौंदर्य प्रतियोगिताएँ, वयस्क छात्र-छात्राओं की सह-शिक्षा, जीवन के हर क्षेत्र में अजनबी मर्दों-औरतों को एक साथ काम करने के अवसर, बेपर्दगी, नसबन्दी, गर्भनिरोधक दवाएँ, शराब आदि की खुली छूट द्वारा व्यभिचार को बल प्रदान करने के सारे साधन उपलब्ध करा दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में साधारण सज्जन व्यक्ति को भी व्यभिचार की प्रेरणा क्यों न मिलेगी? यही कारण है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग इस अपराध के दायरे में आ गया है। इससे विविध प्रकार के रोग, सामाजिक कलह, धन का दुरुपयोग, पारिवारिक सम्बन्धों का विनाश, मानसिक क्लेश, अपहरण, बलात्कार और क़त्ल तक की घटनाएँ होती हैं और ये सारे रोग बड़ी तेज़ी से समाज का विनाश कर रहे हैं।

एक ओर व्यभिचार को बढ़ावा देनेवाले साधनों और उसके प्रचार-प्रसार के लिए संचार के सारे साधन क़ानून की निगरानी में पनप रहे हैं, विकसित हो रहे हैं। दूसरी ओर नारी-सुरक्षा क़ानून, महिला आयोग, अपराध पर रोक लगाने के क़ानून, कड़ी सज़ा देने का प्रावधान आदि का राग भी अलापा जाता है। एक तरफ़ वह आग भड़काई जाती है जिससे घर जलकर राख हो जाए और दूसरी तरफ़ कुआँ खोदा

जाता है कि उसके पानी से घर की आग बुझाई जाए। कैसी विडम्बना है यह! क्या आधुनिकता के नशे में मदहोश लोगों की अक़्ल पर पत्थर पड़ गए हैं!![1]

उदाहरण (3) : इसी प्रकार देश में विद्रोह करने और अशांति फैलाने की सज़ा क़ुरआन ने देश से निकाल देने या फाँसी देने या हाथ-पैर दाएँ-बाएँ से काट डालने की सज़ा निश्चित की है। यह सज़ा भी लोगों के सामने दी जाती है ताकि दूसरे लोगों को फ़साद फैलाने का साहस न हो। शांति भंग करने और देश-द्रोह के अपराध पर आज भी सारे देशों में भारी सज़ाएँ दी जाती हैं। क़ुरआन द्वारा प्रस्तावित सज़ा पर जो लोग एतिराज़ करते हैं उनकी जेलों के अन्दर आज भी कितनी अमानवीय सज़ाएँ दी जा रही हैं उनपर विचार नहीं किया जाता। जबकि उनमें कितने ही कथित अपराध ऐसे होते हैं जिनका कोई सुबूत नहीं होता। सिर्फ़ आरोप पर बिना छान-बीन किए घोर यातनाएँ दी जाती हैं। बिजली के झटके लगाना, बर्फ़ीले और खौलते पानी को शरीर पर उंडेलना, यौन अपराधियों को अमानवीय यौन यातना देना, उलटे लटकाकर धुआँ देना, पाख़ाने के रास्ते से पेट में पानी डालना और फिर पेट दबाकर मुँह के रास्ते पानी निकालना, त्वचा पर सिगरेट से जला-जलाकर फोड़े डालना और शरीर की खाल को ज़ख़्मी कर देना, आँखें निकाल लेना आदि-आदि कितनी ही ऐसी सज़ाएँ हैं जिनसे कभी असभ्य मानव भी परिचित नहीं था। आज सभ्य और आधुनिक युग के मानवतावादी परदे के पीछे यह सब कर रहे हैं। फिर भी वे मानवतावादी हैं! वही अगर सत्ता की कुर्सी पर बैठ जाएँ तो देश की अस्मिता को बेचें, कमीशन और रिश्वत खाएँ, ग़बन करें, जनता को धोखा दें, गोदामों में अनाज सड़ाकर जनता को भूख से मार डालें फिर भी देशभक्त कहलाएँ। उनके लिए सब कुछ माफ़ होता है। अच्छे-अच्छे दावों के पीछे ऐसे भारी-भारी अपराध होते हैं कि कोई उन्हें सज़ा देना भी चाहे तो दुनिया में नहीं दे सकता ।

क़ुरआन ने शांति स्थापना के लिए और देश की समृद्धि के लिए जो क़ानून

---

1 बलात्कार की घटनाएँ हमारे देश में और स्वयं देश की राजधानी दिल्ली में इतनी बढ़ चुकी हैं कि अब हमारी सरकार इसके अपराधी को मृत्यु दंड देने पर विचार कर रही है।

—प्रकाशक

बनाए हैं उनका उल्लंघन करनेवाला कोई भी व्यक्ति अपराध सिद्ध होने पर सज़ा पाने का अधिकारी है। लेकिन आज के युग में धन और सत्ता की शक्ति रखनेवालों को कोई क़ानून सज़ा देने की ताक़त नहीं रखता। सत्ता से बाहर का कोई व्यक्ति यदि सत्ता का विरोध करे, चाहे वह उसका औचित्य ही क्यों न रखता हो, उसपर देश-द्रोह की धाराएँ लागू की जाती हैं। उसको कुचलने के लिए अपने बनाए हुए क़ानूनों को भी अपने पैरों से रौंद डालतें हैं।

उदाहरण- (4) : हर इनसान की जान और उसके शारीरिक अंगों का महत्त्व बराबर है। इसलिए बिना अधिकार के कोई व्यक्ति चाहे वह सामाजिक प्रतिष्ठा में बड़ा हो या छोटा किसी भी व्यक्ति के शरीर का कोई अंश नष्ट कर देता है तो उसके शरीर का वही अंग सज़ा के तौर पर नष्ट कर दिया जाएगा और यदि वह किसी की जान ले ले तो उसकी भी जान ले ली जाएगी। हाथ के बदले हाथ, पैर के बदले पैर, आँख के बदले आँख, नाक के बदले नाक और कान के बदले कान की तरह जान के बदले जान का क़ानून क़ुरआन ने प्रस्तावित किया है। लेकिन इस क़ानून का एक दूसरा पक्ष भी है। नाबालिग़ों, पागलों और बिना इरादे के भूल से होनेवाली इस प्रकार की क्षतियों के कर्ताओं को बदले की यह सज़ा नहीं मिलेगी बल्कि दूसरी आर्थिक और क़ैद आदि की सज़ा दी जाएगी। नुक़सान उठानेवाले पक्ष की ओर से यदि अपराधी को क्षमादान दे दिया जाए या क्षतिपूर्त्ति के रूप में कोई रक़म लेकर माफ़ कर दिया जाए तो अदालत अपराधी पर वह सज़ा लागू नहीं करेगी।

इस क़ानून को निरस्त करके जो दूसरी सज़ाएँ प्रस्तावित की गई हैं, वे मानव-जीवन की रक्षा में समर्थ नहीं हो पा रही हैं। आज मानव के जीवन का कोई मूल्य ही बाक़ी नहीं रह गया है । हर ओर मार-काट और क़त्ल ने जीवन को गाजर-मूली की तरह सस्ता बना दिया है । इनसानों के अंग निकालकर बेचे जा रहे हैं यहाँ तक कि अंगों के क्रय-विक्रय का बड़ा कारोबार बन गया है। क़ुरआन की यह शिक्षा यदि क्रियान्वित की जाए तो निश्चय ही इस कुवृत्ति पर रोक लग सकती है।

क़ुरआन ने मानव-जीवन के महत्त्व को अत्यन्त उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया

है। इसलिए जीवन-रक्षा का उपाय भी उसके निकट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क़ुरआन के अनुसार किसी एक इनसान को बिना उचित कारण के मार डालना संपूर्ण मानव-जाति का क़त्ल कर देने के बराबर है, और एक मानव के जीवन को बचा लेना सारी मानव-जाति को जीवन-दान देने के जैसा है। (क़ुरआन 5:32)

इस नियम का पालन पूरे मानव समाज में सामूहिक रूप से हो सके और कोई सरफिरा इसकी अवहेलना न करे इसके लिए जान के बदले जान अर्थात क़ातिल को क़त्ल कर देने की सज़ा क़ुरआन ने निर्धारित की है।

ऐसा इसलिए किया गया है ताकि हर इनसान के जीवन का सम्मान हो सके। कोई दूसरी सज़ा किसी क़ातिल को इस जघन्य अपराध से नहीं रोक सकती। आज दुनिया में क़त्ल का बाज़ार गर्म है। इनसान का लहू पानी से भी सस्ता हो गया है। इसका कारण यही है कि क़त्ल जैसे अपराध की समुचित सज़ा देने की व्यवस्था नहीं की गई है। मरनेवाले से हमदर्दी न होकर मारनेवाले (हत्यारे) से हमदर्दी जताई जाती है। मौत की सज़ा को अमानवीय कहा जाता है। अगर आज भी दुनिया से क़त्ल और ग़ारतगरी को रोकना है तो एकमात्र क़ुरआन की सज़ा ही इसके लिए उपयुक्त हो सकती है।

निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए तो एक साधारण व्यक्ति की समझ में भी यह बात आसानी से आ जाएगी कि मानव-जीवन की रक्षा को सुनिश्चित करने के लिए हत्यारे को मौत की सज़ा मिलनी ही चाहिए। दूसरी कोई भी सज़ा जीवन रक्षा की गारंटी नहीं दे सकती।

कभी-कभी हत्या का कारण शत्रुता या उद्दण्डता नहीं भी हो सकती है। हत्या के बाद हत्यारे में ऐसा परिवर्तन भी आ सकता है कि वह अपने इस कृत्य पर पश्चाताप करे और जिसकी हत्या उसने की है उसके परिवार-जनों से अच्छा बरताव करके और अपने अपराध का भारी मुआवज़ा प्रायश्चित के रूप में देकर अपनी ज़िन्दगी को दुरुस्त कर ले। फिर हत्यारे को सज़ा दिला देने की स्थिति में मृतक के परिवार जनों को उसका कोई लाभ नहीं पहुँचता। ऐसी स्थिति में हत्यारा मृतक के परिवार-जनों की सहमति से कोई नियत राशि देकर क्षमादान देने के लिए राज़ी कर

सकता है। मृतक के परिवारजन स्थिति को देखते हुए फ़ैसला करने में स्वतंत्र हैं। उनपर कोई दबाव नहीं डाला जाएगा। उसकी सहमति और क्षमा करने की प्रार्थना पर अदालत हत्यारे को सज़ा से बरी कर सकती है ।

हत्यारा अगर भारी अपराधी है और शत्रुता की भावना हत्या के बाद भी उसमें है तो मृतक के परिवार-जन ख़ुद ही उसकी जान नहीं छोड़ेंगे। वे किसी उचित कारण से ही अपराधी को क्षमा कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में इस क़ानून को अमानवीय कदापि नहीं कहा जा सकता।

क़ुरआन की व्याख्या का अधिकार किसको है?

संदेह : *क़ुरआन मजीद की व्याख्या या अर्थप्रतिपादन (INTERPRETATION) का अधिकार सिर्फ़ मुसलिम विद्वानों को है। ग़ैर-मुसलिम विद्वानों को यह अधिकार क्यों नहीं ?*

किसी भीं समस्या के समाधान के दो पहलू होते हैं – एक सैद्धान्तिक और दूसरा व्यावहारिक। दोनों के बीच जब तक सामंजस्य और सुसंगति न हो तब तक उसमें क्रियाशीलता नहीं आ सकती।

यदि यह सिद्धान्त निश्चित कर दिया जाए कि किसी विशिष्ट समूह या सम्प्रदाय को किसी पुस्तक के पढ़ने-समझने या उसकी व्याख्या करने का अधिकार है और उसके अतिरिक्त सभी उस अधिकार से वंचित हैं तो यह अन्याय होगा। व्यावहारिकता में उसके ऐसे दुष्परिणाम सामने आएँगे जैसे कि वेदों के बारे में दुनिया देख चुकी है। वह विशिष्ट अधिकार प्राप्त समूह किताब में परिवर्तन करेगा और उसकी मनमानी व्याख्या करेगा और दूसरे लोग उसकी निन्दा करेंगे। इस खींचा-तानी में दोनों ओर से अनर्थ होगा। पुस्तक बेचारी अपने अर्थ की तलाश में खुद विलुप्त हो जाएगी।

इसके विपरीत यदि व्यावहारिक रूप से हर व्यक्ति को इसकी खुली छूट दे दी जाए कि वह किसी भी पुस्तक की व्याख्या करने का अधिकारी है और उसकी व्याख्या को भी मान्यता दी जाएगी तो ऐसी स्थिति में हर व्यक्ति की मनमानी व्याख्या से वास्तविकता विकृत होकर रह जाएगी। जिस व्यक्ति ने किसी विशिष्ट पुस्तक की व्याख्या करने की आवश्यक योग्यता प्राप्त न की होगी, वह भी अपनी व्याख्या को मान्य ठहराने के लिए हठधर्मिता दिखाएगा। इसलिए विसंगति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

संसार की किसी भी विषय की पुस्तक और विद्या की उचित व्याख्या और अर्थ निश्चय करने का कार्य उस विषय के ज्ञाता और उच्च स्तर की योग्यता रखनेवाले व्यक्ति को ही सौंपा जाता है । उसी के कार्य को मान्यता दी जाती है। यह एक सार्व-भौमिक सत्य है और ऐसा होना ही चाहिए। डॉक्टरी और चिकित्सा विज्ञान की एक किताब की व्याख्या करने का अधिकारी वही व्यक्ति है जो उस विषय का समुचित और पर्याप्त ज्ञान रखता हो। जिस व्यक्ति का वह विषय नहीं उसे उसकी व्याख्या का कोई अधिकार नहीं पहुँचता। फिर इस नियम और सिद्धान्त से क़ुरआन ही को क्यों अलग रखा जाए? इसकी आशा क्यों की जाती है कि जो व्यक्ति क़ुरआन का उचित ज्ञान न रखता हो, उसकी भाषा और विद्या से अपरिचित हो, फिर भी वह उसकी व्याख्या का अधिकारी बन बैठे? क़ुरआन के ज्ञान के अभाव में तो मुसलिम को भी क़ुरआन की व्याख्या करने का अधिकार नहीं है चाहे वह दूसरे विषयों का कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो। यह प्रतिबन्ध किसी ग़ैर-मुसलिम ही के लिए हो, ऐसी बात नहीं है।

वास्तविकता यह है कि बिना सोचे-समझे कुछ लोगों ने यह भ्रम फैला रखा है कि क़ुरआन के समझने और उसकी व्याख्या करने का अधिकार किसी धार्मिक़ पदाधिकारी या उनके समूह को ही प्राप्त है। इसका कारण यह है कि कुछ अदालतों में न्यायाधीशों नें मुसलमानों के निजी धार्मिक मामले के विषय में ऐसा निर्णय दिया जो क़ुरआन के मन्तव्यों के विरुद्ध था। फिर भी उसे क़ुरआन सम्मत सिद्ध करने की कोशिश की गई। यहीं से भ्रम फैलाने का काम शुरू हुआ। जबकि ऐसी कितनी ही घटनाएँ मुसलमानों की भी हैं जिनमें उनके ग़लत फ़ैसले को मान्यता नहीं दी गई। बहुधा कुछ नादान लोगों ने क़ुरआन की ग़लत व्याख्या करके मनोवांछित सुविधाप्राप्त करने का प्रयास किया है। उनके ऐसे कृत्य को विद्वानों ने अमान्य ठहराया और उनका विरोध किया। हालाँकि यदि कोई मुसलिम विद्वान भी ऐसा कार्य करता तो उसे अमान्य ही घोषित किया जाता। क़ुरआन किसी भी मुसलमान या धर्माधिकारियों के किसी विशिष्ट गिरोह को मनमानी करने का अधिकार नहीं देता।

क़ुरआन को समझने और उसकी व्याख्या करने के लिए मुसलिम और ग़ैर-मुसलिम की कोई शर्त नहीं रखी गई है। ज्ञान और योग्यता ही वह कसौटी है जिसके

आधार पर किसी की बात स्वीकार की जा सकती है। इसी प्रकार ग़लत विचारों की ग़लती प्रमाण द्वारा सिद्ध कर देने के बाद ही उसे अस्वीकृत किया जाता है।

इस्लाम की पराधीनता काल की विषम परिस्थितियों में क़ुरआन द्वारा अवैध की गई चीज़ों को वैध करने और परिस्थितियों से समझौता करने के लिए कुछ मनचले लोग जिनमें तथाकथित 'उदारतावादी' और 'नई दृष्टि' के दावेदार मुसलिम और ग़ैर-मुसलिम दोनों ही हैं जो इस तरह का कार्य करते हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण शराब और सूद (ब्याज) को वैधता प्रदान करने के प्रयास हैं। क़ुरआन ने उक्त दोनों चीज़ों को घृणित और अवैध घोषित किया है।

दुनिया का कोई भी नियम-क़ानून एक विशिष्ट माहौल और समाज के लिए निर्मित होता है। यदि उसे दूसरे नियमों और माहौल के समाज पर लागू किया जाए तो वह अप्रासंगिक प्रतीत होगा। ये नियम सर्वांग रूप से निर्मित होते हैं। वे सब मिलकर एक इकाई बनाते हैं। दूसरे नियमों पर आधारित समाज में आंशिक रूप से बाहर के नियम लागू करने से विसंगति पैदा होती है। उदाहरणार्थ कम्यूनिस्ट समाज में कुछ नियम पूँजीवाद के या इस्लामी समाज के फिट नहीं हो सकते। इसी प्रकार राजतंत्र में प्रजातंत्र के कुछ नियम लागू नहीं हो सकते।

जिस प्रकार एक मोटर के सारे कल-पुर्जे एक मोटर की पूरी मशीन के अनुकूल बने होते हैं और उसी में फ़िट हो सकते हैं। हवाई जहाज़ के कल-पुर्ज़े उसकी पूरी मशीन के अनुकूल होते हैं। मोटर का एक पुर्ज़ा हवाई जहाज़ के इंजन में फ़िट नहीं हो सकता और हवाई जहाज़ का कोई पार्ट मोटर के इंजन में भी फ़िट नहीं हो सकता। कारण यह है कि वह उसके लिए बनाया ही नहीं गया है। वह जिसके लिए बनाया गया है वहीं पर फ़िट होगा। ठीक इसी प्रकार ग़ैर-इस्लामी समाज में इस्लाम के एक नियम को लागू करने से वह उपयुक्त नज़र न आएगा। इस बाधा को दूर करने के लिए लोग क़ुरआन के नियमों को तोड़-मरोड़कर उसकी मनमानी व्याख्या करके अपना मतलब साधने की कोशिश करते हैं।

समाज की ख़राबियों को दूर करके समाज में परिवर्तन लाना मानव का काम है, न कि ईश्वरीय विधान को ही परिवर्तित कर देना उसका हल है।

क़ुरआन ईश्वरीय विधान है और उसे हर युग के मानव-समाज का मार्गदर्शन करना है। इसलिए उसे विषम समाज में विकृत करके लागू करने से वह दूषित और छिन्न-भिन्न हो जाएगा। ईश्वरीय विधान होने के कारण मानव को उसमें परिवर्तन करने का कोई अधिकार भी प्राप्त नहीं है। अतः ग़लत अर्थ-प्रतिपादन का विरोध करना नैतिक और वैधानिक रूप से उचित है। ऐसी स्थिति में मुसलिम समुदाय को अंधविश्वासी, संकीर्णतावादी या कठमुल्लावादी और रूढ़िवादी (FUNDAMENTALISTS) आदि उपाधियाँ देना सर्वथा अनुचित तथा अन्याय है। ये नए प्रकार की गालियाँ हैं जो सच्चाई और ईमानदारी पर डटे रहनेवालों के लिए तराश ली गई हैं।

(समाप्त)